अंतस

अर्धवार्षिक पत्रिका, अंक-10, 15 अगस्त, 2016

नारी सशक्तिकरण

भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर

नियम निदेश

- अंतस के आगामी अंक में प्रकाशन हेतु अपनी मौलिक एवं यथासंभव अप्रकाशित रचनाएं भेजने का कष्ट करें।
- रचनाएं यथासंभव टाइप की हुई हों, रचनाकार का पूरा नाम, पद एवं संपर्क विवरण का उल्लेख अपेक्षित है।
- लेखों में शामिल छाया-चित्र तथा आंकड़ों से संबंधित आरेख स्पष्ट होने चाहिए। प्रयुक्त भाषा सरल, स्पष्ट एवं सुवाच्य हिंदी भाषा हो।
- अनुदित लेखों की प्रामाणिकता अवश्य सुनिश्चित करें। अनुवाद में सहायता हेतु संस्थान राजभाषा प्रकोष्ठ से संपर्क कर सकते हैं।
- प्रकाशन के लिए किसी भी लेखक को किसी प्रकार का मानदेय नहीं दिया जाएगा।
- अंतस में उन सभी प्रकार के विचारों का स्वागत होगा जो संस्थान परिसर में रहने अथवा काम करने वाले लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं किन्तु किसी भी प्रकार के राजनीतिक विचारों को प्रोत्साहित नहीं किया जाएगा।
- अंतस में प्रकाशित रचनाओं में निहित विचारों के लिए संपादक मंडल अथवा राजभाषा प्रकोष्ठ उत्तरदायी नहीं होगा और इसके लिए पूरी की पूरी जिम्मेदारी स्वयं लेखक की ही होगी।
- रचनाएं अंतस के अनवरत दो अंकों में प्रकाशित न होने की स्थिति में संबंधित रचनाकार राजभाषा प्रकोष्ठ में सुनीता सिंह से उसके बारे में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

स-आभार
संपादक मंडल

अंतस परिवार

संरक्षक
प्रोफेसर इन्द्रनील मान्ना
निदेशक

परामर्शदाता
प्रोफेसर अजित चतुर्वेदी
उपनिदेशक

मुख्य संपादक
प्रोफेसर भारत लोहनी

संपादक
डॉ.वेदप्रकाश सिंह

संपादन-सहयोग
प्रोफेसर अरुण कुमार शर्मा
प्रोफेसर शिखा दीक्षित
डॉ.कांतेश बालानी
डॉ.अनुराग त्रिपाठी
डॉ.अर्क वर्मा
श्री चन्द्र प्रकाश सिंह
श्री विष्णु प्रसाद गुप्ता

अभिकल्प (Design), संकलन
सुनीता सिंह

अनुवाद
श्री जगदीश प्रसाद
श्री भारत देशमुख

छायाचित्र
श्री रवि शुक्ल

सहयोग
विद्यार्थी, हिंदी साहित्य सभा

संकेतक

शुभेच्छा
निदेशक की कलम से 1
उपनिदेशक की दृष्टि में 2
सम्पादकीय 3

रिपोर्ट - 49वां दीक्षान्त समारोह 4
गुरुदक्षिणा - डॉ. तपन बागची 6

साहित्य-यात्रा
पाप और पुण्य का मनोविज्ञान 13
ये सिक्के (कविता) 14
बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ-एक जन अभियान 15
जिंदगी से परे (कविता) 16
महिला सशक्तिकरण 17
आईआईटी कानपुर में नारी शक्ति का आराधन 19
तुम कौन हो?(कविता) 21
विवाह संस्कार 22
स्पृहा मेरे मन की (कविता) 23
जीवन एक खेल 24
अकेलापन (कविता) 27
सत्य घटना (कविता) 27
यादें (कविता) 28
कांजीवरम कहाँ (कविता) 28
मिट्टी की महक (कविता) 29
जोहार 30
सशक्त महिला 'रंग' (कविता) 35
हिंदी की अनौपचारिक कक्षाएं 36
स्त्री अधिकार- एक चुभता दर्द 43
मन के वे कुछ कोने (कविता) 46
अपने डॉक्टर पर विश्वास करें 48
हिंदी एवं उसकी स्थिति 53

परिसर की गतिविधियाँ
छायाचित्र 37

बालबत्तीसी
मैं एक दिन सुबह जल्दी उठी (कविता) 47

भाषा-विमर्श
नुक्कड़ नाटक 51

तकनीकी लेख
वातानुकूलन का मतलब सिर्फ ठंड़ा नहीं होता 38

कार्यालयीन टिप्पणियाँ

निदेशक की कलम से...

अंतस का यह अंक मुख्य रूप से महिला सशक्तिकरण पर केन्द्रित है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर इस संदर्भ में सदैव से जागरूक रहा है क्योंकि हमारे संस्थान में छात्र और छात्राएं लम्बे अरसे से ज्ञान की विभिन्न विद्याओं में साथ-साथ अध्ययन करते आये हैं और यहाँ के सभी संकाय-सदस्य जिसमें महिला एवं पुरुष दोनों ही शामिल हैं, से उन्हें सतत् सम्बल मिला है, इसी तरह संस्थान के अन्य सदस्य स्वस्थ एवं अनुकूल वातावरण में रहते हुए संस्थान की गरिमा के प्रति सजग रहते हुये हमेशा से निष्ठापूर्वक अपने दायित्व निर्वहन करते आ रहे हैं, जो सभी के लिए सराहना की बात है। कार्यक्षेत्र-स्थल में महिलाओं को उचित संरक्षण एवं वातावरण प्रदान करने के आशय से हमने माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय तथा भारतीय संसद द्वारा पारित विधि के अनुरूप "महिला प्रकोष्ठ" को गठित करने की पहल की है। मुझे प्रसन्नता है कि संस्थान का यह महिला प्रकोष्ठ अपनी भूमिका अच्छी प्रकार से निभा रहा है।

एक उच्च तकनीकी शिक्षण संस्थान होने के नाते शिक्षण-क्षेत्र में हमारे संस्थान का विशिष्ट स्थान है और यहाँ न केवल सारे भारत से अपितु अन्य देशों से भी छात्र-छात्रायें अध्ययन की कामना लेकर आते हैं। संस्थान परिसर के उनके अनुभवों से सारे विश्व में हमारे संस्थान की स्वस्थ एवं सुखद तस्वीर उभरे, यही हमारी कामना है।

स्वतंत्रता दिवस की शुभकामनाओं के साथ !

इ. मान्ना

इन्द्रनील मान्ना

निदेशक

उपनिदेशक की दृष्टि में...

यह जानकार अति प्रसन्नता हुई कि संस्थान की गृह पत्रिका अंतस का दसवाँ अंक महिला सशक्तिकरण को समर्पित है। हमारे देश में प्रतिवर्ष 8 मार्च को महिला दिवस के रूप में मनाया जाता है। 21वीं शताब्दी के इस दौर में महिला सशक्तिकरण के संदर्भ में महिला-दिवस को एक उत्सव के रूप में मनाया जाना चाहिए और स्कूलों तथा कॉलेजों को इस दिन की प्रासंगिकता से अवगत करवाया जाना चाहिए। आज पूरा देश इस बात पर तो एक मत होगा कि चाहे परिवार हो, समाज हो या कोई कार्यालय महिलाओं के उचित सम्मान और अधिकार में सुरुचिपूर्ण प्रगति देखी गई है।

बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में शुरु हुई महिला सशक्तिकरण के प्रति जागरूकता का प्रभाव 21वीं सदी में स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ने लगा है। आज की नारी शिक्षा, राजनीति, ज्ञान-विज्ञान, प्रौद्योगिकी, चिकित्सा यहाँ तक कि लड़ाकू विमानों के प्रचालन जैसे क्षेत्र में अपने सहकारी स्वभाव से उच्चकोटि की सृजनात्मकता को अंजाम तक पहुँचा रही है। जहां एक ओर सुश्री अखिला श्रीनिवासन, चंदा कोचर, इंद्रा नूई और किरण शॉ मजूमदार जैसी उद्यमी महिलाओं ने इंडस्ट्री में नया कीर्तिमान स्थापित किया है वहीं सानिया मिर्जा और साइना नेहवाल जैसी अनेक महिलाओं ने खेल जगत में देश का गौरव बढ़ाया है।

वस्तुतः यदि हमें एक अच्छे समाज का निर्माण करना है तो आज की नारी की भूमिका को और विस्तृत फलक प्रदान करना होगा। पत्रिका के कई लेखों में इस विषय पर प्रकाश डाला गया है। मेरा मानना है कि यदि आज की पीढ़ी और आने वाली पीढ़ी को उच्चकोटि की शिक्षा ग्रहण कर नए-नए प्रतिमान स्थापित करना है तो हर तबके की विकास-प्रक्रिया में स्त्रियों की भागीदारी को विशेष रूप से सुनिश्चित करना होगा।

अभी तक अंतस पत्रिका ने अपने उत्तरदायित्व का सफलता पूर्वक निर्वहन किया है। हर्ष का विषय है कि संस्थान के विद्यार्थियों, शिक्षकों, अधिकारियों और कर्मचारियों ने इसकी सफलता में अपनी भागीदारी बढ़ाई है और इसके कथ्य और शिल्प में उत्तरोत्तर सुधार हुआ है। पत्रिका के प्रकाशन से जुड़े सभी सदस्यों को बधाई।

अजित चतुर्वेदी

अजित चतुर्वेदी
उपनिदेशक

सम्पादकीय...

पुराने पेड़ के नीचे
पुराना तिरपाल
और एक पुरानी मेज
उस पर बिछी
कुछ पुरानी चादरों के ऊपर
नए-नवेले कपड़ों को
इस्त्री करते दो पुराने हाथ
वो हाथ
जो दूसरों की सिलवटें मिटाते-मिटाते
अब खुद सिलवट बन गए हैं

सुबह शाम
गर्मी बरसात, या
जाड़े की कंपकंपी हो साथ
वो लगी रहती है तन्मय
सिलवटों को
मुहल्ले (संस्थान) की
इस्त्री से करती है साफ़

उसने सुने हैं नारे
गरीबी मिटाओ
उसने सुना है संस्थान में
तकनीकी बनाओ
पर...
उसकी गरीबी, अब भी
वैसी की वैसी
पता नहीं कैसी ये बनाते तकनीकी
उसकी कोयले की इस्त्री
अब भी वैसी की वैसी

इधर कुछ दिनों से वो सुन रही एक नारा
नारी सशक्तिकरण का खूब ढोल-बाजा
उसकी इस्त्री पहने साहब
भाषण बांचते हैं
मैडमे इंग्लिश में
लम्बी लम्बी हांकते हैं
AC कमरों में लगता है
कि नारी सशक्त हो गयी है
जमीनी हकीकत, पर
वैसी की वैसी ही
रह गयी है

जानती है वह
नारों से नारी का भला न होगा
जो भी होगा
सिलवटों को इस्त्री से
मिटा कर होगा
आने वाली पीढ़ी को
वो सबला बना रही है
अपनी नई नवेली के हाथों
इस्त्री थमा रही है

अंतस का यह अंक उन महिलाओं को समर्पित है जिन्होंने नारों की भीड़ से खुद को दूर रखकर अपने हाथों और हुनर पर विश्वास किया और अपने परिवार और समाज के लिए सबला बन गईं।

भारत लोहनी
भारत लोहनी
मुख्य सम्पादक

49वाँ दीक्षान्त समारोह

भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर देश के राष्ट्रीय महत्व के प्रतिष्ठित संस्थानों में से एक है। संस्थान के उच्चस्तरीय पाठ्यक्रमों, मौलिक अनुसंधानों तथा यहाँ की उत्कृष्ट शिक्षण पद्धति को देश-विदेश में मान्यता दी जाती है। संस्थान से विद्या अर्जन करने वाले विद्यार्थी प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से राष्ट्र एवं समाज निर्माण की प्रक्रिया में संलग्न रहते हैं। देश में पुरातन काल से गुरु-शिष्य परंपरा के आधार पर दीक्षा प्रदान करने की महान परंपरा रही है और इस परंपरा के अनुरूप संस्थान के विद्यार्थियों को उनकी अनिवार्य शिक्षा समाप्त होने पर उपाधि प्रदान करता है तथा उनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता है।

शिक्षा और दीक्षा को एक ही मंच से सम्मान देने के उद्देश्य से दिनांक 27 एवं 28 जून, 2016 को संस्थान के प्रेक्षागृह में 49वें दीक्षान्त समारोह का भव्य आयोजन किया गया। दिनांक 27 जून, 2016 को समारोह के पहले सत्र में परा-स्नातक(पी.जी.) पाठ्यक्रमों के छात्रों को उपाधियाँ एवं मेडल प्रदान किए गए। संस्थान के पूर्व-छात्र एवं वर्तमान में बुफैलो विश्वविद्यालय के अध्यक्ष (चेयरमैन) प्रो. सतीश के. त्रिपाठी इस सत्र में बतौर मुख्य अतिथि उपस्थित हुए तथा संचालक मंडल के अध्यक्ष श्री आर सी भार्गव ने समारोह की अध्यक्षता की। दीक्षान्त समारोह की औपचारिकता के साथ इस सत्र का आगाज हुआ और शनैः शनैः समारोह आगे बढ़ता गया। इस सत्र में परा-स्नातक (पी.जी.) पाठ्यक्रमों के कुल 1247 छात्रों को उपाधियाँ प्रदान की गई। पहले सत्र में परा-स्नातक की उपाधियाँ प्राप्त करने वाले छात्र एवं छात्राओं की संख्या निम्नलिखित तालिका में दर्शाई जा रही है:

	पीएच.डी	एम.टेक	एमबीए	एमडेस	एमएससी	एमएससी	एमएस	वीएलएफए	कुल
छात्र	119	643	29	27	103	21	65	35	1042 (83.6%)
छात्रा	32	121	05	10	22	00	11	04	205 (16.4%)
कुल	151	764	34	37	125	21	76	39	1247

दीक्षान्त समारोह के दौरान देश के सर्वोच्च नागरिक सम्मान "भारत रत्न" से अलंकृत प्रसिद्ध वैज्ञानिक एवं शिक्षाविद् प्रो.सी एन आर राव को विज्ञान-वाचस्पति की मानद उपाधि से सम्मानित किया गया। समारोह में मुख्य अतिथि प्रो. सतीश के. त्रिपाठी ने विद्यार्थियों को दीक्षान्त भाषण दिया। समारोह के अंत में संस्थान के निदेशक प्रो.इन्द्रनील मान्ना ने आभार ज्ञापित किया।

दीक्षान्त समारोह के दूसरे चरण में दिनांक 28 जून, 2016 को संस्थान के पूर्व-स्नातक (यू.जी.) पाठ्यक्रमों के छात्रों को उपाधियाँ तथा मेडल प्रदान किए गए। इस सत्र में भारत सरकार में नीति आयोग के उपाध्यक्ष प्रो. अरविन्द पानगड़िया मुख्य अतिथि के रूप में मंचासीन थे तथा संचालक मंडल के अध्यक्ष श्री आर सी भार्गव ने समारोह की अध्यक्षता की। समारोह के दौरान कुल 884 पूर्व-स्नातक (यू.जी.) पाठ्यक्रमों के छात्रों को उपाधियाँ प्रदान की गई। पूर्व-स्नातक की उपाधियाँ प्राप्त करने वाले छात्र एवं छात्राओं की संख्या निम्नलिखित तालिका में दर्शाई जा रही है:

	बी.टेक	बी.एस.	कुल
छात्र	704	96	800 (90.5%)
छात्रा	63	21	20845 (9.5%)
कुल	767	117	884

इस अवसर पर संस्थान के प्रतिभावान छात्रों को प्रतिष्ठित पुरस्कार एवं मेडल से सम्मानित किया गया। प्रतिष्ठित पुरस्कार एवं मेडल प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों के नाम इस प्रकार हैं -

- प्रेसीडेन्ट गोल्ड मेडलः श्री आयुष सेखरी (बी.टेक.), संगणक विज्ञान एवं अभियांत्रिकी विभाग
- डायरेक्टर गोल्ड मेडलः श्री उन्नत जैन (दोहरी उपाधि), विद्युत अभियांत्रिकी विभाग एवं सुश्री शालिनी गुप्ता (बी.एस.), रसायन विभाग
- रतन स्वरूप स्मृति पुरस्कारः श्री अनुराग सहाय (दोहरी उपाधि), गणित एवं सांख्यिकी विभाग
- डॉ. शंकर दयाल शर्मा पदकः श्री पृथ्वी राज रामकृष्णाराजा (एम.डेस.)
- केडेन्स गोल्ड मेडलः श्री उन्नत जैन (दोहरी उपाधि), विद्युत अभियांत्रिकी विभाग एवं सुश्री रूबिया हसन (एम.टेक.), पदार्थ विज्ञान एवं अभियांत्रिकी विभाग
- दो वर्षीय मास्टर्स प्रोग्राम गोल्ड मेडलः सर्वश्रेष्ठ ऑलराउन्डर छात्रा-जयमिता बंसल संगणक विज्ञान एवं अभियांत्रिकी विभाग

समारोह के दौरान विश्व प्रसिद्ध शतरंज खिलाड़ी श्री विश्वनाथन आनंद को विज्ञान-वाचस्पति की मानद उपाधि से सम्मानित किया गया। श्री आनंद ने छात्रों को अपने जीवन से जुड़े हुए प्रेरक-प्रसंग सुनाए। समारोह के अगले क्रम में प्रो. पानगड़िया ने अपने दीक्षान्त भाषण में छात्रों को संबोधित करते हुए कहा कि छात्र के जीवन में चार चीजों यथा-बुद्धि, कठोर परिश्रम, दृढ़ता तथा भाग्य की आवश्यता होती है, अतएव छात्रों को इनके मध्य समन्वय बनाकर काम करना चाहिए जिससे उन्हें निस्संदेह सफलता मिले। श्री आर सी भार्गव ने अपने अध्यक्षीय उद्‌बोधन में प्रौद्योगिकी संस्थान के छात्रों को विनिर्माण के क्षेत्र से जुड़ने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने कहा कि विनिर्माण के क्षेत्र में अधिक-से-अधिक प्रतिभावान छात्रों के जुड़ने से "मेक इन इंडिया" जैसी महत्वाकांक्षी योजनाओं को व्यवस्थित रूप से आगे बढ़ाया जा सकेगा। संस्थान के निदेशक प्रो.इन्द्रनील मान्ना ने समारोह के अंत में प्रेक्षागृह में उपस्थित विद्यार्थियों, संकाय-सदस्यों, अभिभावकों का आभार व्यक्त किया तथा स्नातक छात्रों के उज्ज्वल भविष्य की कामना की। तत्पश्चात् राष्ट्रगान के साथ दीक्षान्त समारोह का समापन हुआ।

राजभाषा प्रकोष्ठ

शिक्षा

शिक्षा का अर्थ क्या है, हमें शिक्षित क्यों किया जाता है, और यह शिक्षा किस स्तर की हो, इन बातों का पता लगाना हमारे लिए बेहद जरूरी है। प्रश्न यह है कि क्या शिक्षा केवल तकनीकी स्तर पर ही हो-यानी शिक्षा का उद्देश्य सिर्फ नौकरियाँ पाना, और नौकरियाँ पाने के प्रयोजन से विभिन्न परीक्षाएं पास करना ही है या फिर यह एक सर्वांगीण प्रक्रिया है।

सर्वांगीण शिक्षा क्या है इसके निहितार्थ क्या हैं, यह पता लगाना क्या हममें से प्रत्येक के लिए महत्वपूर्ण नहीं है। यदि हम इसका पता लगा सकें, किसी वर्ग विशेष से जुड़कर नहीं बल्कि स्वतंत्र रूप से, कि मानव मात्र के लिए महत्व रखने वाली ऐसी सर्वांगीण शिक्षा के मूलभूत तत्व कौन से हों, तभी हम एक अलग तरह का विश्व बना सकेंगे।

साभार- जे कृष्णमूर्ति

कहा जाता है कि एक बार एक शिष्य ने विनम्रतापूर्वक अपने गुरु जी से पूछा-'गुरु जी, कुछ लोग कहते हैं कि जीवन एक संघर्ष है, वहीं कुछ अन्य कहते हैं कि जीवन एक खेल है इसलिए जीवन को एक उत्सव की तरह बिताना चाहिए। इनमें कौन सही है? गुरु जी ने बड़े ही धैर्यपूर्वक उत्तर दिया-'पुत्र, जिन्हें समर्थ गुरु नहीं मिलता जीवन उनके लिए एक कठोर संघर्ष बनकर रह जाता है; परंतु जिन्हें समर्थ गुरु मिल जाता है तो उसका जीवन एक खेल की तरह बन जाता है क्योंकि वह गुरु द्वारा बताये गए मार्ग पर चलने लगता है और ऐसे लोग ही जीवन को एक त्यौहार की तरह व्यतीत करने का साहस जुटा पाते हैं। वस्तुतः भारतीय जीवन पद्धति में गुरु-शिष्य सम्बन्धों की सुदीर्घ परंपरा रही है। चाहे पौराणिक आख्यानों की बात करें अथवा आज के विकसित समाज की बात करें, हम हर समय पाते हैं कि एक समर्थ गुरु की छाप छात्र के सम्पूर्ण जीवन पर बहुत मुखर होकर दिखलाई पड़ती है। समर्थ गुरु और मेधावी शिष्य ही मिलकर किसी शैक्षणिक संस्था को चिरस्थायी बनाते हैं। गुरु जहाँ संस्था की परंपरा का परिष्कार करता है तो वहीं छात्र ता-उम्र अपनी मातृ-संस्था के प्रति श्रद्धावनत रहते हुये अहर्निश उसकी सेवा में तत्पर रहता है।

संस्थान की गृह-पत्रिका अंतस के इस दसवें अंक में "गुरु-दक्षिणा" शीर्षक के अंतर्गत संस्थान के पूर्व मेधावी छात्र प्रोफेसर तपन बागची के जीवन-वृत को उन्हीं की जुबानी प्रस्तुत किया जा रहा है। बताते चलें कि उत्तर प्रदेश की ऐतिहासिक संगम नगरी से अपनी उच्चतर माध्यमिक शिक्षा पूर्ण करके वर्ष 1967 की संयुक्त प्रवेश परीक्षा में अपने पहले ही प्रयास में आपन 52 ऑल इंडिया रैंक हासिल करके भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर में यांत्रिक अभियांत्रकी में प्रवेश लिया। कहने की आवश्यकता नहीं है कि प्रोफेसर बागची बचपन से ही प्रबल मेधावी थे और अपनी मातृ-संस्था और गुरुजनों के प्रति अनुराग रखते थे जिसके फलस्वरूप आपने न केवल बतौर छात्र और सफल वैज्ञानिक के रूप में संस्थान का गौरव बढ़ाया बल्कि संकाय-सदस्य के रूप में संस्थान की सेवा की और हाल ही में वृहद स्तर पर आपके आर्थिक सहयोग से संस्थान परिसर में "आशियाना" नाम से एक वातानुकूलित शॉपिंग कॉम्प्लेक्स का भी निर्माण किया गया है।

अंतस परिवार प्रोफेसर बागची को धन्यवाद ज्ञापित करने के साथ

पबना में मेरा जन्मस्थल

उन्हीं की जुबानी उनका जीवन-वृत्त प्रस्तुत करते हुये हर्ष का अनुभव कर रहा है और उम्मीद करता है कि सुधी पाठक और विद्यार्थी उनके जीवन-वृत्त से अवश्य प्रेरित होंगे।

7 दिसम्बर, 1941 को जापानियों द्वारा पर्ल हॉर्बल नष्ट किया जा चुका था। जिसके प्रतिकार में जापान को अमरीकियों के हाथ हिरोशिमा और नागासाकी की बर्बादी के रूप में 20 वीं शताब्दी की भीषण त्रासदी झेलनी पड़ी। ये दोनों घटनायें हमारे और आईआईटी के बी.टेक. बैच 67 के साथियों के जन्म से पूर्व की है। उस समय तक मेरी भारतीय एवं वैश्विक इतिहास की समझ का आधार वे नेतागण थे जो लाठी पर तिरंगा झंडा लेकर गलियों में इधर-उधर जुलूस लेकर घूमते थे। अपने से दो साल वरिष्ठ छात्र अभय भूषण (Batch- 65) की भाँति मेरा बचपन भी इलाहाबाद शहर में ही बीता जहाँ काँग्रेस के वरिष्ठ नेताओं तथा कई स्वतंत्रता सेनानियों के समूहों को आसानी से उद्यानों तथा गलियों में चहल-कदमी करते देखा जा सकता था । इस प्रकार मैंने स्वयं डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, पंडित नेहरू, शास्त्री जी, ढेबर भाई के साथ-साथ निराला, बच्चन तथा राम कुमार वर्मा आदि को नजदीक से देखा। किन्तु शीघ्र ही हम लोग स्कूल की पढ़ाई में व्यस्त हो गये । मेरे पास खिलौनों, उपकरणों व पुस्तकों की बाढ़ आ गई और मेरे स्कूली बैग में लेन्स, मैग्नेट, वायर तथा बैट्रीज आदि की भीड़ लग गई। मुझे पूर्वी बंगाल के अपने नाना जी के गाँव पबना से कुछ खास प्रेरणा मिली, जिसके एक प्रतिष्ठित जमींदारी वाले घर में मेरा जन्म हुआ था। मेरे नाना जी एक वकील थे किन्तु वे पूरी तरह लोकप्रिय यांत्रिकी में डूबे हुए थे। उन्होंने वकालत केवल उन्होंने वकालत केवल प्रसिद्धि

पाने के लिए की। इसके फलस्वरूप शीघ्र ही मेरी लकड़ी से बनी यंत्र पेटी कल-पुर्जों जैसी चीजों से भर गई जिसमें कीलों से जड़ा एक छोटा सा स्पीकर भी शामिल था।

इंजीनियरिंग की तरफ मेरा वास्तविक रुझान दो घटनाओं की वजह से पैदा हुआ। पहली घटना यह थी कि मेरी माताजी एक दिन मुझे एक इंजीनियर के घर लेकर गईं जिन्होंने अपने घर में बरामदे की मेज के ऊपर एक भव्य भवन (जिसको बनाने का उन्हें ठेका मिला था) का नमूना रखा हुआ था। इंजीनियर के घर पर उस लकड़ी के नमूने को देखकर मैं आश्चर्यचकित रह गया कि इंजीनियर कैसे-कैसे सोचते हैं और फिर किस प्रकार उसको मूर्त रूप देने के लिए कार्य करते हैं। इसके पश्चात मेरे नाना जी मुझे नई दिल्ली में एक औद्योगिक मेला व कुतुबमीनार दिखाने के लिए ले गये।

दिल्ली के औद्योगिक मेले में लगी प्रदर्शनी के दौरान मैंने देखा कि भाप का इंजन कैसे कार्य करता है और रेडियों से कैसे आवाज निकलती है। इन दोनों घटनाओं ने मेरे मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव डाला। ओह! मैं उस समय यह नहीं जानता था कि मुझे अभी संयुक्त प्रवेश परीक्षा (JEE) में शामिल होना है!

इलाहाबाद शहर में पालन पोषण एवं स्कूली शिक्षा

1950 के दशक में शिक्षा को लेकर घरों में अधिक चर्चा नहीं हुआ करती थी। अध्यापक पाठ पढ़ाते और हम उत्तर उछालते तथा बड़ी उत्सुकता से शारीरिक शिक्षा एवं मध्याह्न भोजन के अवकाश की प्रतीक्षा करते ताकि हम शीघ्र ही समोसे वाले एवं रसीले अमरूदों वाले के पास दौड़ कर पहुँचें। उन दिनों सिक्कों का आकार एवं स्वरूप भिन्न होता था। कुछ सिक्के चौकोर होते थे, कुछ किनारीदार तथा कुछ छेदवाले। उस समय एक अच्छे अमरूद की कीमत एक पैसा थी। बहरहाल उन दिनों मेरी माताजी एक सेर घी खरीदने के लिए चार रूपये देती थीं और इस प्रकार एक पैसे में अमरूद बहुत सस्ते नहीं थे! जलेबी छः आने में बहुत ढ़ेर सारी आ जाती थी तथा शहर की सड़कों पर इक्का-दुक्का कारें ही नजर आया करती थीं। समय से हम हाई स्कूल में चले गये । मेरे पिताजी ने मेरा दाखिला एक बंगाली स्कूल में करा दिया ताकि मैं कुछ साहित्य से परिचित हो सकूँ। स्कूल में मैनें मेढक पकड़ना सीख लिया था। किन्तु हमारे सर्वश्रेष्ठ अध्यापकों ने हमें संस्कृत, विज्ञान एवं गणित की उत्कृष्ट शिक्षा दी। इससे मुझे बहुत प्रेरणा मिली। पढ़ाई के प्रति मेरी रुचि को देखकर भौतिक विज्ञान के एक प्रतिष्ठित अध्यापक ने मुझसे कहा "तुम बहुत लंबी छलांग लगाओगे।" मुझे इस चीज का कोई अंदाजा नहीं था कि उन्होंने क्या कहा। बगल में ही राजकीय इंटर कॉलेज इलाहाबाद स्थित था जहाँ पर राज्य के मेघावी विद्यार्थी अध्ययन किया करते थे और जहाँ 80 के दशक में आईआईटीयन मणीन्द्र अग्रवाल ने भी अध्ययन किया था। हम लोग संयुक्त प्रवेश परीक्षा (JEE) में सम्मिलित हुए। हमारे अपने कॉलेज में ही आयोजित यह परीक्षा कतई भी परेशान करने वाली नहीं थी। इस परीक्षा के छोटे परन्तु गूढ़ प्रश्नों को देखकर ऐसा लग रहा था मानों कोई भौतिक एवं रसायन विज्ञान की मौखिक परीक्षा दे रहे हों। अंतर बस केवल इतना था कि इस बार हम लिखित परीक्षा दे रहे थे। कुछ ही दिन बाद कानपुर से एक भूरे रंग का लिफाफा प्राप्त हुआ जिसके अंदर हरकोर्ट बटलर प्रौद्योगिकी संस्थान (एच.बी.टी.आई.) कानपुर की काउंसलिंग में शामिल होने का बुलावा आया था।

जीवन में नया मोड़ तब आया जब मेरे पिताजी, जो इलाहाबाद विश्वविद्यालय से विज्ञान में स्नातकोत्तर थे साथ ही एक परिश्रमी सरकारी अधिकारी भी थे, सरकार द्वारा पोषित नये भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों पर छपी प्रेस रिपोर्ट से संतुष्ट नहीं थे । मेरे एक शुभचिंतक पड़ोसी "अंकल" ने मेरे पिताजी को मुझे इंजीनियरिंग "(हाथ-पैर तोड़ेगा हथौडा मार के)" से दूर रखने की सलाह भी दी । इस तरह काउंसलिग पत्र को फाइल में लगा दिया गया और मुझे विश्वविद्यालय से विज्ञान स्नातक (बी.एससी.) में प्रवेश लेने हेतु आवेदन पत्र लाने के लिए कह दिया गया। एक सुबह मैं राजकीय इंटर कॉलेज के अपने दो पुराने दोस्तों के साथ इलाहाबाद विश्वविद्यालय जाने के लिए निकला। जैसे ही हमने इलाहाबाद विश्वविद्यालय के भव्य परिसर में प्रवेश किया तो अचानक गणित विषय के हमारे सबसे सम्मानित अध्यापक पाण्डेय जी मिल गये। उन्होंने पूछा 'बच्चों क्या कर रहे हो?' किसी ने उत्तर दिया, सर तपन का आईआईटी से कॉल

IIT Kanpur NCC1965 बैच चीन-पाक को चुनौती के लिए तैयार

लेटर आया है पर वो नहीं जा रहा है इसके पापा ने रोक दिया है। चिढ़े हुए पाण्डेय जी ने तुरन्त अपनी साइकिल पलटी और घर तक मेरा पीछा किया। पिता जी को समझाया और मुझे रेलगाड़ी से कानपुर के लिए रवाना कर दिया। "पाण्डेय जी अमर रहें।"

आई आई टी में प्रवेश

भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर में प्रवेश पाना भी मेरी किस्मत में लिखा हुआ था। संस्थान में पहुँचने के पश्चात सर्वाधिक चर्चा इस बात की थी कि किसने कितनी आल इंडिया रैंक हासिल की है। गोपाल गुप्ता की रैंक 41 थी, लक्ष्मण धुलकोटिया की रैंक 44 थी। इन दोनों के पश्चात मेरी ऑल इंडिया रैंक 52 थी। सबको यह जानने की उत्सुकता थी कि किसकी क्या रैंक है। इस प्रकार प्रतिभागियों की ऑल इंडिया रैंक धीरे-धीरे बढ़ती गई जैसे 2105, 3072, 5023 एवं और भी हजारों में। मेरी रैंक के हिसाब से मुझे यांत्रिकी अभियांत्रिकी विभाग मिला जो मेरी व्यक्तिगत रुचि के बिल्कुल उलट था। हाँ मुझे यह कहा गया था कि आईआईटी से यांत्रिकी अभियांत्रिकी में बी.टेक.करने के पश्चात मेरे पास कैरियर को लेकर ढेरों अवसर होंगे। (मैंने सोचा था कि अच्छा रेडियो बनाने से भी एक अच्छा कैरियर बन सकता है।)

छात्रावासों की कहानियाँ भी मजेदार थीं, जैसा कि अभय (Batch'65) एवं मणीन्द्र अग्रवाल (Batch'86) ने अंतस के पूर्व अंकों में ही इसका उल्लेख किया है। हमारे समय तक डॉ. मुथाना ने रैगिंग को प्रतिबंधित कर दिया था पर वह रुकी नहीं थी। जिमखाना चुनाव ने आईआईटी के जीवन को और अधिक रुचिकर बना दिया था उस समय मैं एन. सी. सी. कैंप का सीनियर अन्डर ऑफिसर बना दिया गया था। एन. सी. सी. के प्रति मेरे जनून को देखकर रेजिडेण्ट आर्मी मेजर ने सोचा कि कहीं मैं फेल न हो जाऊँ। हमने उनको कभी यह अंदाज़ नहीं होने दिया कि हम ईश्वर के कृपापात्र बच्चे हैं और मेसाच्यूसेट्स इस्टीट्यूट ऑफ टेक्नालॉजी से लेकर बर्कले तक के सफर की तैयारियों में व्यस्त हैं।

हमारे गणित के अध्यापक प्रोफेसर जे एन कपूर को जल्द ही हमारे 67 के बैच का नमूना देखने को मिल गया। उदय प्रताप सिंह ने (जो बाद में स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड के कार्यकारी निदेशक बने) ने उनको Limit की सबसे अधिक सारगर्भित अभियांत्रिकी परिभाषा से आश्चर्यचकित कर दिया। "एक हवाईयान अपने अपेक्षित लक्ष्य के अधिकाधिक समीप ही जा सकता है, उससे अधिक नहीं और यह तो हमारा पहला साल था। बाद में IBM 1620 (जो कि non-stop US flight के बाद बैलगाड़ी से चकेरी से आई आई टी लाया गया था।) पर चिरंजी लाल अग्रवाल ने, जो अपनी लखनऊ की किराना दुकान से कम्प्यूटेशनल कुशलता लेकर आये थे, चार हफ्ते में सेमेस्टर भर का FORTRAN Jobs समाप्त कर दिया। अनुदेशक ऐक्टन को पहले बताया गया था कि इस कक्षा के कुछ बच्चे बैलगाड़ी से घर जाते थे। अब उन पर कुछ और सोचने के लिए दबाव बन गया। इस प्रकार के रत्नों की चमक से हॉल-1 स्थित कमरा संख्या 301-B में मेरा अपना टेबिल लैम्प प्रकाशित होता रहा। मेरे साथ रवि, शशि एवं गुप्ता जैसे ऐसे छात्र थे जिन्होंने आई आई टी कानपुर के बैच-65 के अग्रणी छात्रों तथा अपने नायकों को परास्त करने की रणनीति बनाई हुई थी। इनको हमने अक्सर कानपुर टेक्सटाइल स्थित छात्रावास के फुटबाल मैदान पर अंजाम दिया।

आई आई टी में जीवन

मैसाच्यूट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नालाजी से आये हुए Bill Schreiber ने हम सभी को मुठ्ठी भर three-legged transistors तथा spongy breadboard दिये। द्वितीय वर्ष की प्रयोगशाला में हमनें engineering free-wheeling पर कार्य करने का स्वाद चखा। एम्पलीफायर एवं आसलेटर्स को कैथोड रे ट्यूब (CRT) के हुक में फंसाया गया जिसके अंदर तरंगें उछल-कूद करती दिखाई पड़ती थीं किन्तु इस दौरान प्रयोगशाला के एक तकनीशियन ने टिप्पणी की कि ये तो अभी पढ़ाया भी नहीं गया है। हमारा जवाब था, "कौन परवाह करता है! यह आई आई टी है।" कुछ ऐसा ही वाकया प्रोफेसर श्रीनाथ की स्ट्रैस लैब में भी हो चुका था। इस प्रयोगशाला में बी. टेक. के विद्यार्थी उस कार्य में लगे रहते थे जिसको पीएच.डी. के विद्यार्थी कर रहे थे। जब हम चौथे वर्ष में पहुँचे तो हमारे पास Erikson's Cessn के डैनो पर लगी Pitot tube थी जिसके बुलबुले हमारे लिए अर्जुन की मछली के जैसे थे और हम थे केलकर पुस्तकालय से भी 2000 फीट ऊपर! अपने अध्ययन के पाँचवे वर्ष में प्रवेश करते ही राजेन्द्र कुमार, प्रशांत कुमार और स्वयं मैंने पूरी तरह कार्यरत थर्मोइलेक्ट्रिक रेफ्रिजरेटर का अभिकल्प एवं विनिर्माण किया जिसके अंदर घनी बर्फ जमी हुई थी जब बाहर का

तापमान संभवतः तीन अंकों में रहा होगा। इस प्रकार संस्थान में रहते हुए यह हमारे, आई आई टी प्रवास की एक बड़ी उपलब्धि थी और उन साथियों, जिनका आई आई टी में चयन नहीं हो पाया था, के लिए पूर्णरूप से एक अबोध्य चीज थी। चौथे वर्ष में हमारे सबसे प्रिय प्रोफेसर विजय स्टोक्स, वेदांता कादंबी, हरीश अग्रवाल तथा कई अन्य प्रोफेसर पूछने लगे कि आई आई टी की पढ़ाई पूरी करने के पश्चात आप लोग क्या करेंगे? ईमानदारी से कहूँ तो उस वक्त मेरा मस्तिष्क एक दम भावशून्य था। हम अपने आई आई टी के जीवन में पूरी तरह मस्त थे। हमारे मस्तिष्क में चल रहा था कि संभवतः हमें रोजगार मिल जाएगा (उस समय हम आई आई टी के बारे में कुछ कम ही जानते थे)। शीघ्र ही मुझे बिना ज्यादा भाग दौड़ किये कोलकात्ता में 705 रूपये मासिक की नौकरी मिल गई। परन्तु अब हम विदेश से बुलावे की प्रतीक्षा कर रहे थे।

आईआईटी के बाद का जीवन : कनाड़ा में अध्ययन तथा विशाल Exxon–Mobil कंपनी में कार्य

सुभाष गर्ग और मैं - रोम, पेरिस तथा लंदन होते हुए टोरंटो पहुँचे। जेट लेग से उनींदी आँखों के बावजूद भव्य प्रतिमाओं, शानदार भोजनालयों, साफ सुथरे चर्चों एवं विदेशी धरती की पहली झलक ने हमें मंत्रमुग्ध कर दिया परन्तु जिस चीज़ ने मुझे सबसे अधिक आश्चर्य चकित किया वह यह थी कि मेरे आस-पास थोड़े-बहुत लोग ही अंग्रेज़ी बोलने वाले थे। फ्रांस के लोग पूर्णरूप से अपने अंग्रेज़ी पाठ से बचते नजर आये परन्तु इसके पश्चात भी उन्होंने सबसे शानदार भवनों, यंत्रों एवं सड़कों का निर्माण किया है। तो आखिरकार यह प्रकट हुआ कि अंग्रेजी भाषा को बोले बिना भी काफी तरक्की की जा सकती है। हमने देखा उत्कृष्ट मूर्तियों के नीचे पथरीली सड़कों पर फैले यूरोप के व्यवहार कुशल फल विक्रेता अंग्रेजी भाषा सीखें बिना भी काफी अच्छा व्यापार कर रहे थे।

सन् 1967 के दौरान टोरंटो विश्वविद्यालय के कैम्पस में कई नोबल पुरस्कार विजेता मौजूद थे। नये विद्यार्थियों के स्वागत में मार्शल मैकलूहन ने कक्षा में कालीन बिछा रखी थी। वहाँ के प्रोफेसर आई आई टी के जीमर मैन और ऐक्टन की तरह दिखाई पड़ रहे थे जो अमेरिकन लोगों की शैली में ही बातें किया करते थे।

व्यवस्था के नाम पर 50 major street वाले किराये के कमरे, जिसके प्रथम तल पर एक पुर्तगाली परिवार रहता था, के साथ हमनें सामंजस्य बिठाने का सफल प्रयत्न किया। टोरंटो में संयुक्त राज्य अमेरिका के युवकों की भरमार थी। इन युवकों ने वियतनाम जाना अपनी मर्जी से छोड़ दिया था। दूरदर्शन पर साइगोन में हो रहे ताजे बम हमलों की लगातार रिपोर्टिंग हो रही थी। मैंने नजदीक से गिटार लिए हुए वयस्क हिप्पी लोगों को देखा। वे हमेशा हमारे खाने को चटपटा बना देते थे।

मुझे सबसे पहले अपने MASc के लिए जोन बुजाकौट के साथ काम करने का अवसर मिला, जो एक आस्ट्रेलियन प्रवासी थे और उसके पश्चात मैनें जिम टेम्पलटन, जो एक प्रिंसटोनियन स्कॉट थे, के साथ भी कार्य किया। वे एक ऐसे फरिश्ते थे जो ईश्वर ने मेरे लिए ही चुन कर भेजे थे। तदुपरान्त जिम ने मेरे निबंध 'पंक्ति सिद्धान्त' के लिये सह-लेखक के रूप में भी कार्य किया। उन्होने मुझे ऑनटारियों के गाँव दिखाये और पहली बार मेरे लिए चाइनीज डिनर की व्यवस्था की। मेरे लिए जिम पृथ्वी पर मौजूद सबसे दयालु इंसान थे जो धीरे-धीरे मुझे शोध की तरफ ले गये परन्तु कभी भी मेरे शोध कार्य की दिशा निर्धारित नहीं की। यह मेरे लिए अपना रास्ता स्वयं तलाशने जैसा था। मैंने अपनी पी-एचडी सन् 1971 में मात्र एक साल 10 महीने में पूरी कर ली पर अब मेरा वजन कानपुर की तुलना में 14 lbs कम था।

U of T Regatta के विजेता तथा प्रशिक्षक के साथ ग्रुप फोटो

ये 60 के दशक के वो प्रारंभिक दिन थें जब भारतीय लोग अमेरिका में यदा-कदा ही देखने को मिलते थे और उत्तरी अमेरिका के निवासी हमें अपने घर, झील के किनारे बसी कुटिया, तथा दूरस्थ गाँवों में घुमाने के लिए लेकर जाया करते थे। अध्ययन करना, सप्ताहांत पर नृत्य करना, संगीत सभायें आयोजित करना, शिविर लगाना, नौकायन,

पैदल लंबी यात्राएं करना आदि नित्य की गतिविधियाँ थीं । अतः हममें से कुछ जो सौभाग्यशाली थे कभी कभार ही कुछ और करने की सोच सकते थे सिवाय अपने घर माँ को फोन करने के । हमें शीघ्र ही इस बात की सूचना मिली कि भारत ने बांग्लादेश को आजाद कराने के लिए पाकिस्तान को बुरी तरह से परास्त कर दिया । सन् 1971 में मैं अपनी माता जी को यह जानकारी देने के लिए भारत वापस आया कि अब मेरी पढ़ाई पूरी हो गई है परन्तु मैं अभी कुछ और साल विदेश में कार्य करना चाहता हूँ । इस प्रकार मैंने अपनी "शिक्षा" का अगला चरण प्रारंभ करने के लिए सर्निया पट्रोलियम रिफाइनरी स्थित विशाल Exxon-Mobil कंपनी में कार्यभार ग्रहण कर लिया ।

Exxon-Mobil कंपनी–पश्चिम का व्यवसायिक जीवन

बाहर की दुनिया के लिए Exxon-Mobil कंपनी धन और तेल से समृद्ध एक विशाल कंपनी है । कर्मचारियों के रूप में हमारे लिए यह एक उत्कृष्ट कंपनी थी जहाँ कर्मचारियों को नई विधि प्रौद्योगिकी विकसित करने के लिए विशिष्ट प्रोत्साहन दिया जाता है तथा इस प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल करके ग्राहकों तक पेट्रोल को उचित बाजार दर पर उपलब्ध कराने का कार्य किया जाता है। इसमें पूर्णरूप से समर्पित स्त्री एवं पुरूष कैंसर की विशेष परवाह किये बिना हाइड्रोकार्बन से खेलते थे। हमने सामाजिक स्वयं सेवकों के रूप में भी कार्य किया तथा शहर के वयस्क लोगों को इस ओर जागरूक किया कि वे सड़कों पर लगे संकेतों को कैसे पढ़ें । जब मैं Exxon कंपनी में कार्य कर रहा था तो उस समय कंपनी ने मुझे मैसाच्यूसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलोजी में रिस्क मैनेजमेंट पर अध्ययन करने के लिए भेजा तथा Foxboro में ऑटोमेशन पर शिक्षा के लिए भेजा। सन् 1973 में मैं स्वयं इरान के राजकुमार रिजा पहलवी को अपने Lube Oil संयत्र के पास लेकर गया था। मैं चाहे इस कार्य के प्रति कितना भी उत्साही रहा हूँ मुझे इस बात का सदैव भय था कि कहीं तेल संयत्र में कार्य करते हुए मुझे या परिवार के अन्य लोगों को कैंसर का रोग न लग जाए। मगर मैंने इस चुनौती को अपरिहार्य समझकर स्वीकारा। इस चुनौती तथा उद्यम के लिए मुझे सोने की एक Exxon कॉलर पिन तथा वाइस प्रेजीडेन्ट का एक्सट्रा आर्डिनरी कन्ट्रीब्यूशन अवार्ड भी मिला। उस समय तक मैं कंपनी के लिए चार महाद्वीपों में कार्य कर चुका था तथा कंपनी की भावी योजनाओं पर कार्य कर रहा था। सौभाग्य से ईश्वर नें मेरी मनोकामना पूरी की और मुझे भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर के औद्योगिक प्रबंधन अभियांत्रिकी विभाग ने पढ़ाने के लिए बुला लिया।

फैकल्टी बिल्डिंग की तीसरी मंजिल पर आईएमई के विभागाध्यक्ष का कार्यालय

स्वदेश वापसी

मेरे दोनों बच्चें – the Cabbage Patch Kid (शर्मिला) तथा Joe (गौतम) दोनों ने अपनी कार्टून की पुस्तकों को बाँधना शुरू कर दिया तथा सन् 1987 में परिवार के सभी सदस्य आई आई टी कैम्पस आ गये। यहाँ पहुँचने के पश्चात हमें आई आई टी का कैंपस स्वर्ग के जैसा लगा। मंजीत कालरा एवं मेरे कुछ पुराने शिक्षक एवं दोस्त अभी भी कैंपस में थे। हम सब बेवाक भारतीय परिवेश में ढल गये। अगले बीस वर्षों के दौरान तेल के क्षेत्र में कार्य करने से जुड़ी मेरी तमाम यादें धूमिल हो गयीं। निश्चित रूप से मैं कह सकता हूँ कि इसका पूरा श्रेय अत्यधिक विनम्र संतोष गुप्ता, कृपाशंकर तथा नरेश बत्रा को जाता है।

उन्होंने वांछित शैक्षणिक लक्ष्यों को पहचानने में मेरी मदद की। अतः बी टेक करने के 20 वर्ष पश्चात अगले 20 वर्ष उत्साह के साथ अध्यापन एवं शोध कार्यों को निष्पादित करने में बीत गये। समस्या

केवल छठी मंजिल पर लगे बिना पम्प के कूलर की थी।

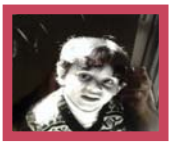

जैसे ही 90 का दशक बीता तो मुझे आई आई टी की संस्कृति एवं अवधारणा का अन्य स्कूलों में प्रचार-प्रसार करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। अतः मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अनुरोध पर मैंने एशिएन इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी बैंकाक, नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ इंण्डस्ट्रियल इंजीनियरिंग मुंबई, एस पी जैन दुबई, NDS InfoServ मुंबई, Narsee Monjee (NMIM) मुंबई/ शिरपुर तथा कलिंगा इस्टीट्यूट ऑफ इंण्डस्ट्रियल टेक्नोलॉजी भुवनेश्वर आदि के परिसरों में आई आई टी की संस्कृति एवं अवधारणा को पहुँचाने का कार्य किया। मैं स्वीकार करता हूँ कि इस दौरान भी मैंने अपने अन्दर के प्रदीप को बुझने नहीं दिया। जब मैं इस कार्य में लगा हुआ था तब भी मैं Research gate पर अपने रिसर्च फोल्डर को भरता ही रहता। कुछ पुस्तकें प्रकाश में आईं: भारत की Taguchi विधि तथा जी ए द्वारा प्रतिपादित विश्व की पहली ISO gooo कार्य-योजना। हालाँकि जो बिल्कुल अप्रत्याशित चीज थी वह महान आई आई टी खड़गपुर के शीर्ष को स्पर्श करना था जिसने मुझे क्वालिटी इंजीनियरिंग में शोध कार्य करने पर विज्ञान वाचस्पति (D.Sc.) की उपाधि प्रदान की। भारत के राष्ट्रपति महामहिम श्री प्रणव मुखर्जी ने उस दीक्षान्त समारोह में उपस्थित होकर समारोह की गरिमा बढ़ाई थी।

महामहिम राष्ट्रपति के हाथों विज्ञान-वाचस्पति-उपाधि को ग्रहण करते हुये।

कमतर विद्यालयों में जीवन पर चिंतन – अर्थहीन अवशेष

कमतर विद्यालयों एवं कॉलेजों की तुलना में आईआईटी के विद्यार्थियों एवं संकाय सदस्यों में उत्कृष्टता का प्रत्यक्ष रूप से अंतर देखा जा सकता है। यह सच है कि हमें अच्छी ऑल इंडिया रैंक हासिल करने के लिए जी तोड़ मेहनत करनी पड़ी थी लेकिन हम सब सौभाग्यशाली थे कि हमें एक अप्रतिम वातावरण में प्रवेश मिला। वर्तमान में 75 प्रतिशत भारतीय इंजीनियर फिलहाल रोजगार के लिए अयोग्य हैं। सच्चाई यह है कि ऐसे इंजीनियरों को गलत ढंग से तैयार किया गया है अर्थात् उनको अध्ययन के दौरान अधकचरे शिक्षक, घटिया प्रयोगशालाएं, पुस्तकालय एवं अत्यन्त साधारण मूलभूत सुविधाएं उपलब्ध कराई गई और उन्हें मिला उद्देश्यहीन एवं निर्जीव वातावरण जो विद्यार्थियों में किसी भी प्रकार की उत्सुकता को समाप्त कर दे। बड़े खेद के साथ कहना पड़ता है कि यह उन लोगों को नहीं दिखाई पड़ता जो भारतीय युवाओं की किस्मत को नियंत्रित एवं शासित कर रहे हैं। प्राथमिक विद्यालयों से लेकर विश्वविद्यालयों तक में अच्छे संकाय सदस्यों की कमी है । स्थिति ये है कि कॉलेजों को अपने यहाँ से पढ़कर निकले बेरोजगार विद्यार्थियों (ऐसे विद्यार्थी जिन्होंने अपनी पढ़ाई भी पूरी नही की होती) को ही पढ़ाने के कार्य में लगाने के लिए बाध्य होना पड़ता है । मैंने बी एवं सी स्तर के कई कॉलेजों में या तो अध्यापन कार्य किया है या फिर प्रशासक के तौर पर अपनी सेवाएं दी हैं। अधिकांश विद्यालयों में मुझे उत्साह एवं महत्वाकांक्षा की कमी स्पष्ट रूप से नजर आई । बहुत से कॉलेज सिस्टम को दोषी ठहराते हैं परन्तु ऐसे कॉलेजों के पास आत्म विश्वास विकसित करने की कोई योजना नहीं है । अगर आप उनसे शोध कार्यों की बात करते हैं तो वे आपसे नाराज हो जायेंगें। मैं एक युवा के रूप में ऐसे कई कॉलेजों में गया हूँ जहाँ पर मीडिया इन कॉलेजों की खबरों को प्रमुखता से छाप रहा है परन्तु उनमें से अधिकांश कॉलेजों में उपलब्ध मूलभूत सुविधाओं एवं वातावरण से बिल्कुल भी संतुष्ट नहीं हुआ जा सकता इन कॉलेजों के पास ऐसा कोई रोल मॉडल नहीं है जिसका ये अनुसरण कर सकें । मुझे शंका है कि क्या ऐसे कॉलेजों में कार्यरत अध्यापक सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) के बारे में जानते भी हैं या नहीं। मेरी नजरों में ऐसे विद्यालयों को चलाना अर्थहीन राष्ट्रीय फिजूलखर्ची है जो अभी भी अनवरत रूप से जारी है।

सेवा-निवृत्ति

शिक्षा के उपरान्त मेरी इच्छा एक प्रशासक के तौर पर सफलतापूर्वक नेतृत्व करने में सक्षम होने की थी। ईश्वर ने मुझे यह अवसर चार बार निदेशक के रूप में प्रदान किया। ईश्वर के आशीर्वाद से मैंने आई आई टी से बी.टेक. किया था। इससे एक उपयोगी शिक्षक बनना अपेक्षाकृत कहीं ज्यादा आसान सिद्ध हुआ। पर आई आई टी के डी एन ए में नेतृत्व की भी महान क्षमता है। मुझे सबसे अधिक संतुष्टि इस बात से मिली कि मैंने अपने जीवन में आने वाली जिम्मेदारियों को बेहतर तरीके से निभाने के लिए अपनी कुशलताओं को धीरे-धीरे निखारा। मैं ऐसी ही एक जिम्मेदारी के रूप में अपने नियोक्ता के लिए NMIMS विश्वविद्यालय में 10 करोड़ की लागत वाले BOSCH ऑटोमेशन सेन्टर के विचार की परिकल्पना किया और उसके निर्माण से लेकर उसे परिचालित करने तक के लिए तकनीशियनों, संकाय सदस्यों तथा विद्यार्थियों के एक दल को प्रशिक्षित करने में सक्षम हुआ। विगत दिनों में दूसरे संस्थानों को दिये गये इन सेवाओं की तरह मैं आज भी अन्य संस्थानों को अपना योगदान देने में व्यस्त हूँ।

एक मराठी मानुष BOSCH ऑटोमेशन सेन्टर खुलने की घोषणा कर रहा है

मेरा संदेश

यदि आप युवा हैं या आपकी उम्र 20 साल है तो अपनी महत्वाकांक्षाओं की अग्नि को प्रज्जवलित करें। उन लोगों से प्रेरणा लें जिनका आप सम्मान करते हैं। अगर आप उनसे प्रेरणा लेंगे तो आपको जीवन में कभी भी पीछे मुड़कर नहीं देखना पड़ेगा। आपके कई सीनियर आईआईटीयन मित्र होगें जो कभी आपकी ही तरह सामान्य विद्यार्थी रहे होगें। परन्तु आज देखिए वे कहाँ हैं। silicon valley में ये छाये हुये हैं उन्होंने कुछ लक्ष्य निर्धारित किये तथा उन लक्ष्यों को दृढ़तापूर्वक हासिल भी किया।

- यदि आप की उम्र 35 साल है तो आप राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति अर्जित करने का प्रयत्न करें।
- यदि आपकी उम्र 45 वर्ष है तो आप अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति अर्जित करने का प्रयत्न करें।
- यदि आप सेवानिवृत्त हो रहे हैं तो आप निर्माण के भागीदार बनें तथा व्यस्त रहें। ●

अनुवाद - राजभाषा प्रकोष्ठ

विनम्रता

नमन्ति सफलाः वृक्षा नमन्ति सज्जना जनाः।
शुष्कं काष्ठं च मूर्खाश्च न नमन्ति कदाचन।।

फलों से लदे पेड़ झुके रहते हैं। उसी प्रकार सज्जन पुरुष अत्यंत विनम्र होते हैं। परन्तु सूखा काष्ठ और मूर्ख ये दोनों कभी भी नहीं झुकते, अकड़े ही रहते हैं। इसी संदर्भ में तिरुवल्लुवर जी ने भी कहा है, महानता सदा विनय सम्पन्न होती है। तुच्छता अपने आप को श्रेष्ठ मानकर सदा गर्दन ऊँची किए रहती है।

प्राचीन युग से भारत एक आध्यात्मिकता प्रधान देश रहा है परन्तु वर्तमान में नैतिक मान्यताएं शनैः शनैः विलुप्त होती चली जा रही हैं। इसके फलस्वरूप मनुष्यों में विनय की भावना एवं विनम्रता के गुणों का ह्रास हो रहा है। जब देखिए तब एक न एक क्षेत्र में आंदोलन या क्रांति लाने के लिए आह्वान किया जाता है। परन्तु सच बात तो यह है कि यदि वर्तमान वातावरण को देखते हुए कोई क्रांति लाने की आवश्यकता है तो सर्वोपरि नैतिक क्रांति की। अतएव देश का नैतिक उत्थान करना अत्यन्त आवश्यक है ताकि विनय एवं शील की भावना जागृत हो सके।

पाप और पुण्य का मनोविज्ञान

आज के दौर में बलात्कार, दहेज हत्या, लूट-पाट, रिश्वतखोरी, छोटे-बड़े घोटाले, मिलावट, अनैतिक धनार्जन, पदों का दुरुपयोग इत्यादि घटनाएँ अनवरत सुनायी पड़ती हैं। हमारे देश के प्रत्येक कोने में ऐसे विचलित कर देने वाले समाचार आज आम हो चुके हैं। यहाँ अपने देश का विशिष्ट रूप से उल्लेख करने का कारण यह है कि ये वही देश है जहाँ की संस्कृति, संस्कार एवं मर्यादा का स्तर ऐसा था कि लोग स्वप्न में भी भ्रष्ट गतिविधियों से दूर रहते थे। हमारी इस प्राचीन सांस्कृतिक एवं चारित्रिक समृद्धि का विस्तृत वर्णन किये जाने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि हम सभी इससे भली भाँति परिचित हैं। हाँ संक्षिप्त में इतना कहना पर्याप्त होगा कि जब सारी दुनिया आदिम युग में थी तब भी हमारी सभ्यता अपने शीर्ष पर थी। न केवल सांस्कृतिक रूप से वरन वैज्ञानिक रूप से भी भारतवर्ष ने विश्व का मार्गदर्शन किया। उदाहरण स्वरुप "चरित्र" शब्द से अंगरेजी के "कैरेक्टर" का बनना, दशमलव से डेसिमल, विधवा से विडो, परिमिति से पेरीमेट्री, द्वार से डोर एवं ऐसे अनेकों शब्दों का निर्माण इसका साक्षात प्रमाण है। इतना ही नहीं नटराज की नृत्य करती प्राचीन प्रतिमा जहां धातुकर्म का आधार हुई वहीं शून्य, दशमलव, अंक गणित, ज्यामिति एवं ज्योतिष इत्यादि ने आधुनिक विज्ञान के आधार स्तंभ का कार्य किया। अल्कोहल आसवन एवं कई रसायनों की विधियां हमारे वैदिक ग्रंथों में श्लोकों के रूप में विद्यमान हैं।

विषय से न भटकते हुए आइये समझने की कोशिश करें कि उस भारतवर्ष में क्यों इतनी दरिंदगी नहीं थी जितनी कि आज है। और यदि उस पुरातन विधि में कुछ अच्छा था तो उसे अंधविश्वास समझकर छोड़ देने की बजाय क्यों न उसके वैज्ञानिक पहलू को समझकर उसे पुन: तर्कसंगत बनाया जाये ताकि आज की हमारी विज्ञानमय पीढ़ी उसमे छिपे विज्ञान को समझ कर उस पर पुन: भरोसा कर सके।

यदि हम तुलनात्मक अध्ययन करें तो पाते हैं कि उपरोक्त वर्णित चारित्रिक पतन प्राचीन भारत में नहीं दिखाई देता। तथ्य संभवत: यह है कि करने योग्य कार्य (शुभ कार्य) एवं वर्जित कार्य (अशुभ कार्य) क्रमश: पुण्य एवं पाप के रूप में परिभाषित थे, और सारा समाज इसका अनुसरण करते हुए घृणित कार्यों से दूर रहता था। निश्चित

नीतू

रूप से इसके पीछे आध्यात्मिक या ईश्वरीय सत्ता का एक भय ही था जो एक वृहद् समुदाय को वैचारिक रूप से नियंत्रित रखता था। अर्थात कोई अनुचित विचार मन में आते ही पाप और पुण्य का मनोविज्ञान सक्रिय हो जाता था जो मनुष्य को किसी भी अनुचित कार्य से दूर कर देता था। और संभवत: यही प्राचीन भारत की बहुआयामी समृद्धि का कारण भी था। उदाहरण के लिए हम "क्रोध" को लेते हैं। क्रोध जिस पर भी किया जाता है उसे दु:ख अवश्य पंहुचाता है और इसीलिये आध्यात्मिक रूप से ये "पाप" की श्रेणी में आता है। अर्थात क्रोध पर संयम न रखने वाले लोगों को इस पाप का दुष्परिणाम अवश्य मिलने वाला है। गीता के सोलहवें अध्याय के इक्कीसवें श्लोक के अनुसार क्रोध नर्क का द्वार है जिसे त्याग देना ही उचित है। किन्तु आज समाज का एक बड़ा वर्ग इस पुरातन आध्यात्मिक विज्ञान से दूर हटता जा रहा है। मंदिर तो हम आज भी जाते हैं लेकिन वापस लौटकर वर्जित कार्य बेहिचक कर लेते हैं।

आज का मनुष्य आधुनिक विज्ञान सम्मत तर्क पर ही विश्वास करता है। डॉक्टर के डायबिटीज बतलाने और शक्कर बंद कर इन्सुलिन लेने की सलाह हम तुरंत मान लेते हैं। क्योंकि टेस्ट रिपोर्ट यह कह रही होती है। अत: आज के दौर में पाप पुण्य के सीधे-सीधे फार्मूले से काम नहीं चलने वाला बल्कि उनके वैज्ञानिक विश्लेषण दिए जाने की आवश्यकता है। उदाहरण स्वरूप अत्यधिक क्रोध करना, लोभ अथवा मोह वश, अनुचित रूप से (या शार्टकट तरीके से) सफलता हासिल करना इत्यादि मस्तिष्क को अस्थिर करने वाले कारक हैं। यह अस्थिरता सकारात्मक कार्यों से दूर करती है। अत्यधिक अस्थिरता

तनाव को जन्म देती है जो किसी न किसी रूप में सारे परिवार को प्रभावित करती है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार मानसिक अस्थिरता या तनाव भी ब्लड-प्रेशर का एक बड़ा कारण है। ब्लड-प्रेशर की निरंतरता हृदय रोगों को आमंत्रण देने साथ-साथ यूरिक एसिड की भी वृद्धि करती है जिससे ह्रदय एवं किडनी के रोग होते हैं। मात्र शारीरिक रूप से ही नहीं वरन आचार व्यवहार पर भी प्रतिकूल असर होता है। आने वाली पीढ़ियों को संस्कार के रूप में अकर्मण्यता एवं दुराचरण ही मिलता है, जो पुनः उनके भविष्य के लिए घातक हो सकता है।

आज हम पुरातन आध्यात्मिक ज्ञान को बिना सोच विचार के नकार देते हैं। वैचारिक रूप से अनियंत्रित होकर और क्षणिक हित को देखकर ही क्रियाशील हो जाते हैं। क्या पाप, क्या पुण्य, हमें कोई भय नहीं। यदि भय है तो केवल आधुनिक नियम कानून का, जिसकी सफलता इसमें लिप्त भ्रष्टाचार तय करता है। ऐसी स्थितियों में समाचारपत्रों का विचलित कर देने वाले समाचारों से आच्छादित होना कोई आश्चर्य की बात नहीं। आज चरित्रहीनता प्रदर्शित करने वाले धारावाहिकों, आवश्यकता से अधिक खुलापन, कंप्यूटर पर पोर्न साइट्स इत्यादि की भरमार है। कुछ एक दुष्परिणामों के चलते वैज्ञानिक नवीनीकरण को रोका भी नहीं जा सकता। हम भले ही विज्ञान युग में हैं किन्तु हमें ये भी समझना होगा कि हमारा प्राचीन ज्ञान जिसने कभी हमें समृद्धि के शीर्ष पर रखा, कमतर नहीं अपितु अत्यंत कारगर एवं विशुद्ध वैज्ञानिक है। बेशक समय की मांग के अनुसार अब पाप और पुण्य की श्रेणी में आने वाले कार्यों की आधुनिक विज्ञान सम्मत विवेचना किये जाने की आवश्यकता है। पोलियो, चेचक आदि के तर्ज पर भ्रष्टाचार विरोधी टीकों के प्रचार की आवश्यकता है जो वैज्ञानिक स्पष्टीकरण दे सके कि वर्जित कार्य हमें क्यों नहीं करना है। अर्थात भ्रष्टाचार को शारीरिक रोगों के कारक के रूप में परिभाषित करने और इसके दुष्परिणामों की वैज्ञानिक विवेचना के आधार पर इसे समझने की आज आवश्यकता है। अध्यात्म का यह वैज्ञानिक स्वरूप अनुचित कार्यों के प्रति भय उत्पन्न करेगा जो वैचारिक नियंत्रण पुनः कायम करेगा और भ्रष्टाचार पर लगाम लग सकेगी।

सोमनाथ डनायक

ये सिक्के

मन की गुल्लक में आज डाले हैं खुशी के सिक्के
अब नहीं चलते मेरे शहर में भी ये सिक्के
कौन बतलाये कि इन सिक्कों का मैं अब क्या करूँ
सिर्फ किस्मत से उछलते हैं आज ये सिक्के।

जिनकी खन-खन से पिता याद मुझे आता था
खेलता कूदता मैं उनसे लिपट जाता था
आज नोटों की शुमारत में पिता भूल गया
रोज गाली भी मुझे देते हैं अब ये सिक्के।

एक सिक्के से पूरा दिन चलाया जाता था
न कोई व्यापारी न कोई और टाला जाता था
आज लाखों में हूँ तो झूठ बड़ा होने लगा
सच की मुझे याद लगातार दिलाते हैं अब ये सिक्के।

नकुल सूराणा, छात्र

"बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ" – एक जन अभियान

जरा महसूस कीजिये उन नन्हे-नन्हे हाथों के स्पर्श को, जो हमारी उंगलियाँ पकड़ कर चलती हैं! महसूस कीजिये उसकी बातों को, जब वो अपनी तोतली आवाज़ में कुछ बोलती है तो हर तरफ खुशियाँ बिखेरती है! महसूस कीजिये विदाई के वो पल जब वो डोली में बैठती है तो सबसे ज्यादा हमसे लिपट कर रोती है! शायद हमारी चीजों का सबसे ज्यादा ख्याल भी वो ही रखती है! जी हाँ ऐसी ही हैं हमारी बेटियां!

भारत जैसे लोकतान्त्रिक देश में जहाँ एक ओर हम नवरात्र के पावन पर्व में कन्याओ को पूजते हैं वहीं दूसरी ओर हमारे समाज की विडंबना है कि हम उन्ही बेटियों को समाज में उचित सम्मान और दर्जा नहीं दिला पा रहे हैं! कन्या भ्रूण हत्या और समाज में बेटियों के प्रति होने वाली अनेक निर्मम घटनाओं के कारण आज बेटियों का अनुपात घटता जा रहा है! जो अत्यंत सोचनीय विषय है !

इस दिशा में एक सार्थक प्रयास की शुरुआत प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी द्वारा 22 जनवरी, 2015 को हरियाणा के पानीपत जिले से की गयी! इस महत्वकांक्षी योजना का नाम है – "बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ" !

इस योजना का उद्देश्य बेटियों का संरक्षण और उनकी घटती जन्मदर को संतुलित करना है! आकड़े बताते हैं कि वर्ष 2011 में 1000 बालकों के मुकाबले देश में 918 बालिकाएं थी! वहीं 1991 के आंकड़ों पर गौर करे तो यह संख्या 1000 बालकों पर 945 थी! बेटियों का ये अनुपात अगर इसी तरह घटता रहा तो समाज में असंतुलन तय है! जरा सोचिये अगर यह संख्या इसी तरह घटती रही तो आने वाले समय में आप अपने बेटों के लिए बहू कहाँ से लायेंगे? फिर तो आपका वंश ही आगे नहीं बढ़ पायेगा! अभी भी मौका है अपनी जिम्मेदारी को समझिये और इस सामाजिक संतुलन को बिगड़ने से बचाइए! आइये, अब एक नज़र डालते है इस योजना से जुड़ी मुख्य बातों पर –:

"बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ" अभियान की मुख्य बातें

- सभी ग्राम पंचायतों में गुड्डा-गुड्डी बोर्ड लगाये जायेंगे और प्रत्येक माह इस बोर्ड में सम्बंधित गाँव के बालक-बालिका के अनुपात को दर्शाया जायेगा!
- ग्राम पंचायत हर लड़की का जन्म होने पर उसके परिवार को तोहफा भेजेगी!

- ग्राम पंचायत एक वर्ष में कम से कम एक दर्जन लड़कियों का जन्मदिन मनाएगी!
- सभी ग्राम पंचायतों में लोगो को "बेटी बचाओ बेटी पढाओ" अभियान की शपथ दिलायी जायेगी!
- किसी भी गाँव में अगर बालक-बालिका का अनुपात बढ़ता है तो वहां की ग्राम पंचायत को सम्मानित किया जायेगा!
- बाल-विवाह के लिए ग्राम प्रधान को जिम्मेदार माना जायेगा और उसके खिलाफ कार्यवाही होगी!
- कन्या भ्रूण हत्या रोकने और लोगो में जागरूकता फ़ैलाने के लिए स्थानीय स्कूलों और कॉलेजों को भी अभियान में शामिल किया जायेगा! ("बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ" अभियान की नियमावली)
- 23 राज्यों/केन्द्र शासित प्रदेशों में 918 के राष्ट्रीय औसत बालक-बालिका के अनुपात वाले 87 जिले चुने जायेंगे!
- 918 के राष्ट्रीय औसत बालक-बालिका अनुपात से ज्यादा लेकिन गिरावट का रुझान दर्शा रहे 8 जिले चुने जायेंगे!
- इसी तरह 918 के राष्ट्रीय औसत बालक-बालिका अनुपात से ज्यादा, लेकिन इसमें बढ़ोतरी का रुझान वाले 5 जिले चुने जायेंगे! इससे देश के अन्य भागो में स्थित जिले भी इन चुने हुए जिलों से सीख लेंगे और इस अभियान को सफल बनायेंगे!

इस योजना के तहत भारत सरकार ने वर्ष 2014-15 में लगभग 100 करोड़ रुपये खर्च किया यह योजना महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, मानव संसाधन विकास मंत्रालय और स्वास्थ्य मंत्रालय की संयुक्त पहल था।

महिला एवं बाल विकास मंत्रालय

आँगनवाड़ी केन्द्रों पर गर्भावस्था के पंजीकरण को प्रोत्साहित करना, सामुदायिक लामबंदी और आपसी संवाद को बढ़ावा देना, अभियान में प्रतिष्ठित व्यक्तियों को जोड़ना और अग्रिम मोर्चों पर काम कर रहे कार्यकर्ताओं और संस्थानों को प्रोत्साहित करने के साथ-साथ उन्हें मान्यता और पुरस्कार प्रदान करना!

स्वाथ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय

गर्भधारण पूर्व और जन्म पूर्व जाँच तकनीकों पर कड़ी नजर रखना, अस्पतालों में प्रसव को बढ़ावा देना, जन्म पंजीकरण और निगरानी समितियों का गठन करना!

मानव संसाधन विकास मंत्रालय

लड़कियों का पंजीकरण, स्कूलों में लड़कियों की ड्रॉप आउट दर में कमी लाना, विद्यालयों में लड़कियों के अनुरूप मानक तय करना, शिक्षा के अधिकार अधिनियम पर अमल करना, स्कूलों में लड़कियों के लिए शौचालय निर्माण पर विशेष ध्यान देना!

वास्तव में "बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ" अभियान बेटियों को उनका हक़ दिलाने और उन्हें शिक्षित व आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में एक जनहितकारी एवं राष्ट्रीय क्रांति है! इस अभियान की सफलता के लिए प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने देश के लोगों से अपील भी की है कि कन्या भ्रूण हत्या जैसे गम्भीर अपराध को जड़ से समाप्त करने में हमें मिलकर काम करना होगा और अंतर्राष्ट्रीय बालिका दिवस पर हमें बेटियों की उपलब्धियों का जश्न मनाना चाहिए क्योंकि वे पढाई से लेकर खेल के मैदान, हर क्षेत्र में बेहतरीन प्रदर्शन कर रही हैं!

तो क्या आप नहीं चाहते कि आपकी बेटी बड़ी राजनेता बने! सानिया मिर्ज़ा की तरह देश की बड़ी खिलाड़ी बने या किसी जिले की कलेक्टर बन कर आपके सामने आये जिससे आपका सिर गर्व से ऊँचा हो जाये!

आइये हम सब मिलकर इस बात का प्रण लें कि बेटियों के प्रति समाज में व्याप्त इस भेदभाव को हम ख़त्म करेंगे! बेटियों को पढ़ाएंगे, लिखाएंगे और उन्हें आत्मनिर्भर बनायेंगे! इसकी शुरुआत हर गाँव, हर घर से हो ताकि सच हो सके हर बेटी का सपना!...

अमित त्रिपाठी

जिंदगी से परे

एक धुंधले से दिन में, एक धुंधली सी सड़क पर हम मिले,
लहरों की ये परेशान सिलवटें कुछ दूर तक भी फैलीं।
मदहोश सी एक चाल में बस ऐसे ही गुनगुनाते हुए,
यों बेपरवाह सी, यों धीमी सी, ये जिंदगी भी चली।
आजाद हैं ये परिंदे, जो किसी की कैद में न आएं,
और सुनहरे से ये कदम, जो बस लफ्ज़ों में बंध जाएं।

न यह हमारी दोस्ती, न कोई प्यार की निशानी है,
दो अधूरी दास्ताँ मिलकर भी कुछ अधूरी रह गयीं।
फिर भी, चल पड़े हम जलते हुए इस सूरज की छाँव में,
उस जुड़ाव से परे, जो सिर्फ लफ्ज़ों से जुड़ी रह गयीं।
और वो, जो इन कदमों के नक्शों पर आज फिर आ कर चले,
हैं वहीं जो जिंदगी के मंच पर दर्शक बने रहें।

एक धुंधले से दिन में, एक धुंधली झील ने कुछ सपने खोये
जो वादे थे सारे, वो बेजुबाँ कब्रों में थम गये
इन लहराती बाहों ने जो अजूबे हमें दिखाए,
कुछ टूट पड़े, कुछ कैद हुए, और कुछ बस यों ही गुम गये।
बचपन के उन पिंजरों में अनजान होकर खेल खेलते हुए
उड़ न पायें हम कभी, गैरों की बातें मानते हुए।

धूल के वो महल जो हमारे मग्न हाथों ने बनाए,
खड़े रहे तूफानों में, खड़े थे वो इन लहरों में।
उन रंगों का क्या, जो छिपकर उन महलों से निकल आएं,
क्या उन्हें निकाल पायें हैं हम, इन शक के झरोखों से?
दु:ख की इन फीकी गलियों से हर दिन हम ऐसे गुज़रे
निकल आएं इन पैमानों से इस जिंदगी से परे।

एक धुंधले से दिन में, हम बैठे रहें कुछ ख्यालों में,
और देखते रहें जिंदगी को फिर से उभरते हुए।
इस निराशा ने जकड़ा है मुझे अपने सवालों से,
निकला हूँ शब्दों के आगे, शब्दों को ही पढ़ते हुए।
एक बेजान सुबह में, जिंदगी से पहले जिंदा होकर,
देखे हज़ारों जीवन मैंने, हर एक जीवन को छूकर।

आयुष मुखर्जी, छात्र

महिला सशक्तिकरण

सदियों से भारत में पुरुष और स्त्री को एक दूसरे का पूरक दर्शाया गया है। स्त्री सम्मान को दर्शाते हुए, स्त्री का नाम सदैव पहले रखा गया, चाहे वो सीताराम हो या राधाकृष्ण हो। एक स्त्री घर की धुरी होती है जैसे माँ की भूमिका में, जो अपने सपनों को अपने बच्चों की आँखों में देखकर पूरा करती है, या फिर एक बेटी की तरह जो खानदान की इज्जत के लिए दूसरे के घर की शान बनती है। स्त्री ही घर को संभालते हुए स्त्री पुरुष के साथ कंधे से कंधा भी मिलाती है फिर चाहे वो प्राचीन काल में युद्ध के समय किसी राजा की 'रणनीति' तय करनी हो, या फिर अपने बच्चों का पालन करना हो। जैसे-जैसे समय गुज़रा, और धीरे-धीरे शहरों की तरफ रुख हुआ, घर संभालने के लिए पूरी जिम्मेदारी अब स्त्री पर आ चुकी थी। पहले तो संयुक्त परिवार में सबके काम बंटे होते थे खाना बनाना, गोबर के कंडे पाथना, कपड़े धोना, दूध दुहना, बच्चे खिलाना ये सभी काम आसानी से हो जाते थे। घर पर कम से कम दस लोग तो होते ही थे, छोटी बहू को झाड़ू और खटका करने के लिए, बड़ी बहू को खाना बनाने का काम, मझली बहू का काम गोबर के कंडे पाथना, कपड़े धोना, घर की बड़ी दूध दुहने जैसे काम कर लिया करती थीं। बच्चे आपस में ही गिल्ली डंड़ा, चोर सिपाही खेल कर समय बिता देते थे, पानी लेने के लिए ननद चली जाती थी, लकड़ियाँ काटकर देवरजी ला देते थे, तब घर की बहू के लिए खाना बनाकर पति के लिए ले जाना आसान हो जो जाता था। खाना भी घर की सभी महिलाएं आपस में बतियाते हुए बनाती थीं... काम आराम से हो जाता था और पता भी नहीं चलता था। फिर नए दौर में परिवार टूटे और नई पीढ़ी शहर की तरफ भागी। पर अब शहर में आकर कहाँ फँस चुके हैं? पहले तो

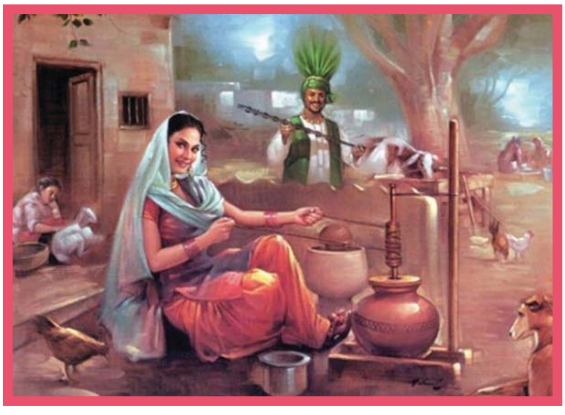

अच्छा लगता था कि इतनी खुली छूट मिल गयी कोई बंधन नहीं, किसी का हुक्म नहीं। पर पहले ही हफ्ते से जैसे अकेलापन खाने लगा था। सुबह से बच्चों को उठाना, सबके लिए खाना बनाना, सफाई करना, घर व्यवस्थित करना, सब्जी लाना, कपड़े धोना आदि में जैसे उलझ ही गए। अकेले बच्चों और पति की सेवा में जैसे खुद ही को भूल गए। ऐसा नहीं था कि ये सब करते अच्छा नहीं लगता था, पर फिर भी किसी की कमी थी, जैसे जिंदगी में कुछ गुम सा था। देखते ही देखते बच्चे बड़े हो चले थे, चाहती न थी कि बच्चे आँखों से दूर हो जाएं पर फिर ममता का आंचल ओढ़कर करियर से नहीं खेलना चाह रही थी। अपने कलेजे पर पत्थर रखकर बच्चों को अलविदा तो कह दिया, पर शायद अब बच्चों की और चिन्ता होती थी। पास थे तो आँखों को सुकून था, पर अब तो न जाने समय से खाते भी होंगे या नहीं?, पता नहीं अपना ख्याल कैसे रखते होंगे? और मुश्किल के समय अपना ध्यान कैसे रखते होंगे? वो पहले रोज़ के फोन हफ्तों और महीनों में एक बार हो चले थे...शायद बच्चे अपनी जिंदगी में मशगूल थे...खुद तो अपने हाथ इसलिए रोक कर बैठे थे कि कहीं वो पढ़ाई ना कर रहें हो? और हम उन्हें डिस्टर्ब न कर दें? फिर चाहे उस समय बच्चे खेल ही क्यों न रहे हों या फिर किसी सिनेमाहॉल में पिक्चर देख रहे हों। समय बीता और बच्चों ने अपने हमसफर खुद ही चुन लिए थे। पिता को ये स्वीकार करने में दिक्कत थी पर उसे भी माँ सहजता से समझ चुकी थी। पिता को माँ ने मना ही लिया। कुछ समय बाद उस माँ के पति तो चल बसे थे, और समय की झुर्रियाँ कब चेहरे पर आ गईं, पता ही नहीं चला। आइना भी यही सच बता रहा था कि पूरी जिंदगी तू तो बस औरों के लिए जीती रही, और तू अपना सब कुछ न्योछावर करके चली। बचे हैं तो बस वो लम्हे और वो यादें जिनका मोल तो बस तेरी ही आँखों में है। पर अभी तो शायद शुरुआत थी....समय बीता तो बच्चों को जब भी जरूरत पड़ी, बिना सोचे अपने लिए बचाया हुआ सब दे दिया । अपने नाती पोतों के लिए जो बचा था, सब दे दिया, जाने का समय भी नज़दीक था और जरूरत पड़ी तो अपने अंग भी बच्चों के लिए दे दिये, वो भी बिना पलक झपकाए और बिना दूसरी बार सोचे। ऐसे बलिदान का उदाहरण तो कोई पुरुष सोच भी नहीं सकता।

ऐसा काम तो सिर्फ एक औरत ही कर सकती है। अपना सब कुछ देकर भी उसके पास इतना कुछ है देने के लिए। पृथ्वी की तरह सबका

बोझ समेट लेती है। धूल होकर चलने के लिए ज़मीन देती है, फूल खिलाती है, पशु-पक्षी को आश्रय देती है।

उसने आखिरी सांस में भगवान से बस यही माँगा कि मेरे बच्चे खुश रहें। ऊपर से देखते हुए स्त्री के माता-पिता को तो फक्र हो रहा था अपनी बेटी पर, और उसका पति भी ये भावना देखकर खुश था... भगवान यही सोच कर मुस्कुरा रहे थे कि उसने स्त्री को सृष्टि की नींव बनाकर कोई गलती नहीं की है। महिला तो सशक्त है, उसका सम्मान करना पुरुष का फर्ज़ है। पुरुष जान ले कि उसका दुनिया में आना उसकी माँ के कोख से हुआ है, उसका बचपन उसकी बहन की हँसी और अठखेलियों के कारण ही मस्ती में गुज़र गया, उसका गृहस्थ जीवन भी उसकी पत्नी ने अपना सब कुछ छोड़कर संभाला है। हर दर्द जो पुरुष न संभाल पाया, उसे स्त्री ने अनायास ही सहन कर लिया। उसे खुद ही पता न चला कि उसमें इतनी शक्ति कहाँ छुपी थी। यूँ ही रो लेना कमजोरी नहीं है, पर उसे जानकर स्वीकार कर लेना तो सुधार का उदाहरण है। हर अश्क जो स्त्री की आँखों से निकला, वो जा कर पुरुष के लिए मोती बना गया।

बच्चा जनते हुए अट्ठारह हड्डियाँ टूटने जितना दर्द होता है, पुरुष को हल्की सी मोच आ जाए तो कराह उठता है। सुबह सबसे पहले उठकर सबसे बाद में सोना, अपने पति के लिए अपने कैरियर की चिन्ता न करना, बच्चे बीमार हों तो रात भर जगना, घर में रौनक और जीवन लाना, एक ग्रहणी ही कर सकती है। पति की तरह काम करते हुए भी पूरे घर की जिम्मेदारी उठाना कोई मजाक नहीं है। यूएस में एक सर्वेक्षण के मुताबिक अगर कोई पुरुष जितना कमाता है तो उतने काम के हिसाब से ग्रहणी की तनख्वाह कम से कम पाँच गुना होनी चाहिए। पर पुरुष-प्रधान समाज में समान कार्य के लिए भी अक्सर महिला का वेतन उसके बनिस्वत औसतन 20 प्रतिशत कम ही होता है। सामान्यत: मातृत्व अवकाश या परिवार संबंधी जरूरतों में स्त्री को ही काम से छुट्टी लेनी पड़ती है, और उस समय छुट्टी देने वाले एहसान जताने तक से नहीं चूकते। स्त्री को दोनों ही तरफ से सहन करना पड़ता है। फिर भी स्त्री को कुछ नहीं चाहिए, वो तो प्यार भी निछावर कर देती है और उसकी वापस उम्मीद भी नहीं करती, वो तो आँसू को भी स्वीकार कर लेती है.... उसे चाहिए तो बस अपने माता-पिता, पति और बच्चों की आँखों में अपनी उपस्थिति का एहसास। जितना प्यार हमें मिले, उसका दसवाँ हिस्सा भी अगर हम वापस करें तो दुनिया से शत्रुता ही खत्म हो जाएगी। अत: व्यवहार में लिंग भेद करना बिल्कुल भी ठीक नहीं है। कटाक्ष एवं स्त्री की तरफ उंगली उठाने से पुरुषों को बचना चाहिए। जब भी स्त्रियों के सामने पुरुष बात करें, फिर चाहे वो ऑफिस हो या रेलवे लाइन, ध्यान रखकर अपशब्द का प्रयोग नहीं करना चाहिए। इससे कार्यालयों में सामूहिक कार्य करने को बढ़ावा मिलेगा और कार्य सफल और संपन्न होंगे। अधिकार जागरूकता के चलते स्त्रियों को भी कई बातों से बचना चाहिए। जैसे कि बस या रेल में कोई वृद्ध पुरुष महिला सीट पर बैठे भी हैं तो किसी युवती को उन्हें फटकार-कर उस सीट की माँग करना उचित नहीं है। हाँ, लेकिन यदि कोई युवक उस पर या पास की सीट पर बैठा है तो उसे जरुर उठकर वह सीट महिला के लिए खाली कर देनी चाहिए।

कई बार स्त्रियाँ अपना अधिकार समझ बैठती हैं कि वे कतार तोड़ कर आगे आ जाएं। कई जगह उनकी अलग कतार होती है। यदि कोई आपातकालीन समस्या न हो तो नियमों का सम्मान करते हुए सामान्य कतार मे चलने को स्वीकारना स्त्री के बड़प्पन की एक और कड़ी बन जाती है।

आखिर स्त्री और पुरुष साथ होंगे तभी तो जिंदगी का चक्र पूरा होगा। पुरुष संग स्त्री वैसे ही हैं: जैसे शरीर संग आत्मा, पानी संग उसकी लहरें, आग और उसकी तपन या लौ। देश तभी तरक्की करेगा जब महिला और पुरुष कदम से कदम मिलाकर आगे बढ़ेंगे और तभी महिला सशक्तिकरण से भारतवर्ष के निर्माण की नींव मजबूत होगी। जय हिन्द।

डॉ. कांतेश बालानी

रहिमन खोजे ऊख में जहाँ रसनि की खानि।
जहाँ गाँठ तहँ रस नहीं, यही प्रीति में हानि।।

गन्ना रस का भंडार होता है, लेकिन जहाँ-जहाँ गाँठ होती है, वहाँ-वहाँ रस का अभाव होता है, यही कारण है कि गन्ने को चूसते समय गाँठों को अलग कर दिया जाता है। प्रेम में गाँठ या छल-कपट होने पर अलगाव की स्थिति पैदा हो जाती है। इसलिए प्रेम में निर्मलता रखें।

आईआईटी कानपुर में नारी शक्ति का आराधनः श्री श्री सर्वोजनीन काली पूजा, समय और मैं...

परिसर में श्री श्री सर्वोजनीन काली पूजा का प्रारम्भ, उद्विकास और महत्व का एक सामाजिक संदर्भ है। वर्ष 1980 में मैंने एक व्याख्याता के रूप में आई आई टी कानपुर में प्रवेश किया था। उस समय की आई आई टी आज की आई आई टी जैसी न थी। आज तो आई आई टी व्यवहार में कानपुर महानगर का हिस्सा ही बन गई है पर उन दिनों वह मध्य उत्तर प्रदेश का एक स्वतंत्र उपद्वीप हुआ करती थी। रावतपुर से यहाँ तक की सड़क लगभग सुनसान रहती थी और हम प्रातः काल या देर शाम को नगर और आई आई टी के बीच आने-जाने से बचते थे। समाचार पत्रों में प्रकाशित पैसे छीन लेने या छुरेबाजी की घटनाओं से डर लगता था। अधिकांशतः हम लोग बड़ा चौराहा, एल आई सी बिल्डिंग या गुमटी नंबर पाँच तक आने जाने के लिए आई आई टी की ही बसों का प्रयोग किया करते थे। शहर से कटे हुए संकाय सदस्यों, कर्मचारियों और विद्यार्थियों के बीच स्वाभाविक रुप से आज की अपेक्षा अधिक घनिष्ठ रिश्ते होते थे। सामूहिकता का भाव अधिक था। अकादमिक क्षेत्र के बाहर हम संकाय सदस्य, कर्मचारी या विद्यार्थी न होकर भाईसाहब, अंकल, बेटा, दादा, दीदी, चाचाजी, भाभीजी, ताईजी, बेटी जैसे संबोधनों का ही अधिक प्रयोग करते थे। कई कई परिवारों के एक साथ बैठ कर वीडियो देखने या "चित्रहार" को देखना एक पारिवारिक उत्सव हुआ करता था, धीरे-धीरे आई आई टी में कुछ त्योहारों ने प्रवेश किया जिनमें सभी प्रान्तों के निवासियों और सभी समुदायों की बराबर की भागीदारी रहती थी।

वस्तुतः इन्हीं सबसे आई आई टी की इस सामासिक संस्कृति का निर्माण हुआ है। इन त्योहारों में काली पूजा, रामलीला-दशहरा, सरस्वती पूजा और ईद आदि प्रमुख त्योहार थे। रामलीला आई आई टी को आस-पास के देहाती परिवेश से जोड़ती थी तो काली पूजा आई आई टी परिसर की समवेत, सामूहिक प्रार्थना की प्रतीक लगती थी जो काफ़ी हद तक आज भी वैसे ही है। हमारे कुछ साथी इसको बंगालियों की पूजा भी कहते थे किन्तु वास्तव में इसमें सभी वर्गों और समुदायों की भागीदारी रहती थी।काली पूजा का आयोजन प्रति वर्ष "श्री श्री सर्वोजनीन काली पूजा समिति" द्वारा किया जाता है। जानकारों से पता है कि पहली बार इस का आयोजन वर्ष 1979 में हुआ था।

तत्कालीन निदेशक डॉ. अमिताभ भट्टाचार्य की प्रेरणा और श्री श्यामा

प्रसाद चक्रवर्ती और श्री डी के सरकार के सहयोग के बिना इस प्रकार का आयोजन संभव नहीं था। मैंने आई आई टी में सितंबर 1980 में प्रवेश किया था और अपने पहले वर्ष में ही मुझे काली पूजा में सम्मिलित होने का अवसर मिला था। तत्कालीन रजिस्ट्रार स्वर्गीय चकलानोविस हमारे पड़ोसी थे और पूजा समिति के एक प्रमुख सदस्य भी। वे एक बहुत नेक दिल इंसान थे और मुझे अपने बड़े भाई जैसे लगते थे। आजकल के अधिकारियों में ऐसी सज्जनता प्रायः देखने को नहीं मिलती। मैं प्रथम बार उनके साथ ही कम्यूनिटी सेंटर में पूजा पंडाल में गया था। बताता चलूँ कि इसी वर्ष उनकी बेटी से फेसबुक पर मुलाकात हुई और मुझे यह जानकार बेतहाशा ख़ुशी हुई कि वह एक वरिष्ठ वैज्ञानिक हैं और कभी-कभी आई आई टी में भी आती हैं। प्रारम्भ के कुछ वर्षों में काली पूजा के कार्यक्रम पूरे एक माह तक चलते थे जो कि अब कुछ दिनों तक ही सीमित रह गए हैं। इनमें खेलकूद प्रतियोगिताएं, कला, संस्कृति, काव्य-पाठ, आदि के अनेकों कार्यक्रम सम्मिलित रहते थे और उनमें सभी आयु और वर्ग के बच्चे और बड़े लोग सम्मिलित होते थे। पूजा की रात्रि में संगीत और नाटकों का कार्यक्रम होता था जिसमें कानपुर नगर के भी कई दल शामिल होते

थे। गानों में सभी भाषाओं और रुचियों का ध्यान रखा जाता था। पूजा के दिन आतिशबाज़ी का कार्यक्रम काली पूजा का एक महत्वपूर्ण अंग था।

आतिशबाज़ी में सभी आयु वर्ग और सभी क्षेत्रों के लोग सम्मिलित होते थे। अगले दिन सुबह-सुबह प्रसाद वितरण रखा जाता था। माँ की मूर्ति का विसर्जन भी कार्यक्रमों का एक महत्वपूर्ण हिस्सा था, जो आज भी है।

मुझे बांग्लाभाषा में पहले से ही रुचि थी और मेरा बंगाली संस्कृति से थोड़ा बहुत परिचय भी था। बिजनौर जिले में, जहां मेरा जन्म स्थान है, विस्थापित बांग्लादेशियों के कई गाँव हैं जिनके कई निवासी मेरे मित्र थे। उन लोगों से मेरी भेंट अपने पड़ोसी और पिताजी के मामा के गाँव के रहने वाले कामरेड दिवाकर के घर पर हुई थी। मैं मूलतः विज्ञान का विद्यार्थी था और मुझमें सामाजिक समझ का अभाव था। मैं मात्र इतना जानता था कि हम गरीब हैं और कुछ पढ़ लिख लेंगे तो जीवन सुधर जाएगा। उन बंगाली मित्रों की बातों से लगता था कि गणेश, काली और शिव की भांति चारु मजूमदार और कार्ल मार्क्स भी हिन्दू बंगालियों के कोई विशेष देवता हैं। बंगाली संस्कृति में माँ का एक विशेष महत्व है। लेकिन माँ का नाम लेते ही जो एक आकृति मस्तिष्क में उभरती थी वह थी सिंहवाहिनी दुर्गा की। आई आई टी में काली पूजा को देखकर सर्वप्रथम मुझे आश्चर्य हुआ कि यहाँ दुर्गा पूजा का आयोजन न करके काली पूजा का आयोजन क्यों करते हैं? पूछने पर एक बंगाली मित्र ने बताया कि दुर्गा के आयोजन में बहुत अधिक शुद्धता की आवश्यकता होती है। उसकी अपेक्षा काली पूजा का आयोजन सरल है, और समय के हिसाब से छोटा भी। आज जब नकल के शोध पत्रों (plagiarism) अथवा लैंगिक भेदभाव पर बहुत से संकाय सदस्यों को रिआयती विचार प्रगट करते हुए देखता हूँ तो लगता है कि उदारवाद और समझौतावाद यहाँ प्रारम्भ से ही काफ़ी स्थापित हैं। शायद आज के समय में किसी भी प्रकार के शुद्ध विचारों को लेकर विकास की यात्रा संभव नहीं हो। हो सकता है कि कुछ और भी कारण हों जैसे दुर्गा पूजा के आस-पास अधिक लंबी छुट्टियाँ होती हैं और बहुत से बंगाली परिवार अपने-अपने घरों को जाते हैं। ख़ैर एक बात जो कहनी पड़ेगी वह यह है कि भले ही इसके आयोजन में कुछ बंगाली प्रोफेसरों और कर्मचारियों की प्रमुख भूमिका रहती हो परंतु काली पूजा समस्त परिसर का त्योहार है और जिसकी हम पूरे वर्ष प्रतीक्षा करते हैं। आयोजन समिति हो, चंदा एकत्रित करना हो, मूर्ति की स्थापना हो, प्रतियोगिताएं हों, विसर्जन हो या मनोरंजन के कार्यक्रम, उनमें सभी की भागीदारी रहती है। शुरुआत के दिनों में प्रगतिवादी होते हुए भी मैं एक धार्मिक व्यक्ति था और माँ के सामने दंडवत प्रणाम करते हुए मुझे आगे के भविष्य के प्रति आशा और आनंद का भावास्वाद होता था। काली माँ आखिर बंगालियों की ही माँ थोड़े हैं, वह समस्त हिन्दू जाति की माँ हैं, समस्त मानव जाति की माँ हैं। जीवन के अनुभवों और चिंतन के लुटेरों ने भले मेरी भक्ति अवश्य छीन ली हो लेकिन काली का मनोहारी रूप आज भी आकर्षित करता है। अब मैं दंडवत करने भीतर तो नहीं जाता किन्तु कम्यूनिटी सेंटर के बाहर से ही आते-जाते देख लेता हूँ। मानस में कुछ होता नहीं है, पर हृदय को शायद कुछ अच्छा लगता है। संस्कारों का प्रभाव उम्र के साथ पूरी तरह समाप्त भी तो नहीं हो सकता।

समय के साथ परिवर्तन होना स्वाभाविक है। परिसर में अब अधिकांश के पास कार है, नगर से लोगों का अधिक संबंध बन चुका है। सबके घरों में टी वी और कंप्यूटर है। बच्चों की रुचियाँ भी बदल गयी हैं। चित्रहार से डी सी प्लस, गूगल, और स्काइप तक, गंगा में काफ़ी पानी बह चुका है। आई आई टी में फिर भी पूजा का महत्व काफी कुछ वैसा ही है। हाँ, कई परिवर्तनों के साथ, कार्यक्रम कम समय के लिए किन्तु बड़े पैमाने पर चला गया है। बाहर से हिन्दी और बंगाली के प्रसिद्ध गायक बुलाए जाने लगे हैं। खाने, कॉफी, साड़ियों, कम्बल, और चित्रकला के स्टॉल लगने लगे हैं। तांत की साड़ियों के अलावा बहुत सी बंगाली महिलाएं और लड़कियां जींस और शॉर्टस में भी देखी जा सकती हैं। कम्यूनिटी लंच का महत्व बढ़ गया है। और इस सब के लिए धन की अधिक आवश्यकता पड़ने लगी है। मुझे ध्यान है कि 1980-81 में हम लोग 11 या 21 रुपये देते थे। पिछली बार 500 रुपये दिये थे पर कलेक्शन टीम के चेहरे के भावों से कुछ असंतुष्टि ही दिखाई दे रही थी। स्टेट बैंक के मैनेजर श्री मोहंती जी इतने अच्छे और सहृदय व्यक्ति हैं कि अगर दान एकत्रित करने वालों की टोली में वे शामिल हों तो 500 रुपयों से कम देना तो मुश्किल ही होता है। आखिर आतिशबाज़ी, प्रोफेशनल गायकों और अन्य कार्यक्रमों के लिए काफ़ी धन की आवश्यता भी तो होती है। काली पूजा क्या नारी शक्ति का आराधन नहीं है? है भी और नहीं भी। काली के चरणों में पड़े महिषासुर को देख कर तो लगता है कि सांकेतिक रूप से ही सही, भारतीय परंपरा में नारी का प्रमुख स्थान है। किन्तु क्या आज के

भारतीय समाज में भी ऐसा ही है? मैंने देखा है और अनुभव भी किया है कि भारतीय समाज में नारी की स्थिति बहुत सोचनीय है। इसको लेकर अभी बहुत कुछ करना है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि नारी की दुर्दशा का सीधा प्रभाव पुरुषों के जीवन पर पड़ता है। नारी की स्थिति ठीक नहीं होगी तो पुरुष भी सहज और सुंदर जीवन नहीं जी पाएंगे। आई आई टी ने इस दिशा में अपनी आवश्यक भूमिका नहीं निभाई है। मेरे अपने एक शोध के परिणामों के अनुसार आई आई टी जैसी संस्थाओं और केन्द्रीय विश्वविद्यालयों में कार्यरत महिला वैज्ञानिक भी लैंगिक भेदभाव और अन्याय का शिकार होते रहे हैं। जन्म से ही होने वाले लैंगिक भेदभाव को दूर करने की दिशा में, दहेज आदि सामाजिक बीमारियों के निवारण की दिशा में, व्यावसायिक शिक्षा के प्रचार की दिशा में, कार्य स्थल पर संभावित लैंगिक भेदभाव के निवारण की दिशा में, गरीब, महिला नौकरों को श्रम का उचित मूल्य दिलाने की दिशा में आई आई टी को अपनी विशेष भूमिका निभानी चाहिए। धार्मिक प्रत्ययों को सामाजिक प्रत्ययों में बदलने की आवश्यकता है। क्या हम कह सकते हैं कि आई आई टी ने, जो भारत में ज्ञान के सृजन और विस्तार का एक शिखर संस्थान है, इन सब दिशाओं में अग्रणी भूमिका निभाई है? मैं तो ऐसा कुछ नहीं कह सकता। क्या हम परम सत्ता को नारी के रूप में पूजने की अपेक्षा नारी को समाज में बराबर का व्यक्ति स्वीकार करने के लिए तैयार हैं? क्या हम दुर्गा को सहचरी या सखी के रूप में देखने के लिए तैयार हो गए हैं? यदि आपका उत्तर हाँ में है तभी काली पूजा का कोई अर्थ है। कभी कभी लगता है कि नारी को स्वयं ही आगे आना होगा और "नारी की दुर्गति" करने वाले महिषासुर का वध करना होगा। चलो हम ऐसा वातावरण तैयार करें कि माँ का मान प्रगट हो, चाहे उसे कितने शिव-वक्षों पर पांव रखते हुए आगे बढ़ना पड़े। और काली पूजा हमारी आध्यात्मिक परम्पराओं से निकल कर सामाजिक यथार्थ बन जाये।

प्रोफेसर अरुण कुमार शर्मा

तुम कौन हो?

तुम कौन हो ?
कुछ जाने से कुछ अनजाने से
तुम कौन हो ?
कभी-कभी मैं तुममें अपने अतीत को ढूंढता हूँ
और कभी खुद में तुम्हारे भविष्य को
और फिर मैं तुम्हें ज़िंदगी की दुआ देता हूँ
कि यह ज़िंदगी
तुम्हारे ठहाकों की गूँज
तुम्हारे होठों की मुस्कान
तुम्हारी आँखों की चमक
बढ़ाती चली जाये

कि तेरी ज़िंदगी उन खुशहाल मुकामों से गुज़रे
जहाँ कांटे मुरझा के फूल बन जाते हैं
तुम चौदह बरस देर से क्यूँ आये?
नहीं-नहीं, शायद तुम सही वक़्त पर आये हो
शायद आज की शाम मेरा बनवास भी ख़त्म हो जाये
शायद आज की शाम मेरी अयोध्या में भी दिये जलें
शायद आज की शाम मैं भी घर लौटूं

विक्रम के किनरा

विवाह–संस्कार

भारतीय समाज में संस्कारों का बहुत महत्व है। संस्कारों की शुरुआत बच्चे के गर्भ में आने से पूर्व ही शुरू हो जाती है और मृत्यु पर्यन्त चलती रहती है। हमें अपने पूर्वजों से प्राप्त ये परम्पराएं जरूर निभानी चाहिए। इन्हीं रस्मो रिवाजों के बहाने हम अपने कुटुम्बियों से मिल पाते हैं, एक दूसरें के करीब आते हैं और दैनिक चर्या से हट कर हम फिर से तरोताजा हो जाते हैं चाहे वो जन्मदिन हो या अन्नप्राशन संस्कार, मुंडन संस्कार या कोई और संस्कार।

पिछले नवम्बर मैं अपनी ममेरी बहन की शादी में गई, बहुत मजा आया। आयोजन इतना भव्य एवं व्यवस्थित था कि कोई भी परेशानी नहीं हुई। मेरे मामाजी एवं मामीजी पेशे से चिकित्सक हैं इसलिए उनको इस आयोजन में तनिक भी कठिनाई नहीं हुई क्योंकि उन्हें कोई आर्थिक बाधा नहीं थी। लेकिन आज प्रत्येक मध्यम वर्गीय माता-पिता संतान के संसार में आने से पहले ही धन जुटाना शुरू कर देते हैं, उनके जीवन का एक लक्ष्य होता है बच्चे की पढ़ाई और शादी के लिए धन इकट्ठा करना। यहाँ तक तो ठीक है लेकिन तस्वीर का दूसरा पहलू भी है जहाँ माता-पिता अपनी जरूरतों को भी खत्म कर देते हैं बच्चों की शादी और पढ़ाई के लिए। अब मैं इससे भी एक स्तर नीचे आपको ले चलती हूँ। हमारे घर की काम वाली बाई के परिवार में उसके तीन बच्चे, एक बूढ़ी सास, अनब्याही ननद और कभी-कभी ही काम पर जाने वाला पति। आमदनी के नाम पर वह घरों में झाड़ू-पोछा, बरतन धोने का काम करती है, उसी से गुजारा चलता है। मेरी काम वाली बाई एकदम शांत स्वभाव की महिला है। एक दिन अचानक आकर वह अपनी ननद की शादी का निमंत्रण पत्र दे गई और साथ ही छुट्टी का आवेदन भी, जो मुझे स्वीकार था। हम अपनी पड़ोसन के साथ उपहार लेकर उसके घर पहुँचे। वहाँ बाकायदा टेंट लगा हुआ था, जयमाल की कुर्सियाँ दूल्हें-दुल्हन के लिए सजी हुई खड़ी थीं। हम दोनों उपहार देकर घर वापस आ गए क्योंकि समारोह में अभी काफी विलंब था। शादी के बाद हमारी काम वाली बाई पुनः काम पर आने लगी। कुछ दिन बाद हमनें देखा कि काम वाली बाई बहुत खिन्न है। उससे कुछ भी काम करने को बोलो तो वह चिड़चिड़ा जाती। एक दिन मैंने उससे प्रेम से पूछा तो पता चला कि वह बहुत कर्जे में डूब गई है जिसे सोच-सोचकर वह परेशान रहती है। मैंने पूछा कर्जा क्यों लिया तो उसने बताया कि ननद की शादी के समारोह को खूबसूरत बनाने के लिए कर्जा लेना पड़ा। जो अब उसके लिए भारी पड़ रहा है। वह रोज सुबह से रात तक लोगों के घरों में झाड़ू-पोछा और बरतन धोने का काम करती रहती है और जब महीने का आखिरी दिन होता है तो घर को जैसे तैसे चला कर कर्जा भी पटाती है। सोचिए इस महंगाई के ज़माने में वो कैसे ये सब कर पाती होगी। आज उसके जीवन का लक्ष्य कर्ज को चुकाना बन चुका है। क्या यह आवश्यक था कि वह इतना कर्जे से लद कर शादी करे? शादी तो वह वैदिक रीति रिवाजों के साथ बहुत सादगी से भी कर सकती थी। लेकिन लोग इतना साहस क्यों नहीं जुटा पाते कि शादी भी अन्य संस्कारों के समान ही एक संस्कार है जिसे बहुत भीड़ इकट्ठा किये बिना भी किया जा सकता है।

हम देखते हैं तो ऐसा लगता है कि समाज में दिखावे की होड़ चल रही है। समृद्धि के दिखावे की शुरुआत निमंत्रण पत्र से हो जाती है और निमंत्रण पत्र कितने ज्यादा छपे, कितने बंटे और कितने लोग आये, ये भी प्रतिष्ठा की बात होती है फिर चाहे वो बेवजह की ही भीड़ क्यों न हो। कौन कितना बड़ा पंड़ाल लगाता है? खाने के व्यंजनों में भी प्रतियोगिता चल रही है, अरे उसके यहाँ इंतजाम इतना बढ़िया था हम उससे भी बढ़िया करेंगे। खाना तो हम अपने पेट के मुताबिक ही खा पाएंगे लेकिन सब खाने के चक्कर में अन्न की बहुत बरबादी होती है, जिसका कोई औचित्य नहीं है। हम आप सबसे भी पूछना चाहते हैं कि समाज में इतना दिखावा क्यों? चलिए मान लेते हैं इसमें माता-पिता ने अरमान पिरोये होते हैं कि वो अपनी बिटिया या बेटे की शादी कैसे करेंगे, उस आयोजन को कितना भव्य करेंगे? लेकिन वहीं समाज का दूसरा वर्ग ये सब केवल इसलिए करता है क्योंकि उसके पड़ोसी ने ऐसा किया था या किसी रिश्तेदार ने ऐसा किया था। अरे यह संस्कार तो खुशियों का है उसे बोझ क्यों बनाना? पाठकों जरा सोचिये...

सुनीता सिंह

स्पृहा मेरे मन की

नीले गगन में पंछियों संग उड़ना
है मुझे,
बादलों संग अठखेलियाँ करने की
स्पृहा है मेरे मन की ।

गूंजा करे सारी फिजायें
किलकारियों से मेरे,
घर का हर कोना रोशन करने की
स्पृहा है मेरे मन की ।

हिरनी के समान कुलांचे मारा करूँ
उपवन में,
प्रकृति के सान्निध्य में खो जाने
की स्पृहा है मेरे मन की ।

माँ देखे मुझे तो भर दूँ खुशियाँ
उसके नयनो में,
पिता का गर्व-दीप्त मुख देखने की
स्पृहा है मेरे मन की ।

उत्थान के सोपान पर चढ़ते जाना है
मुझे,
सफलता के शिखर को चूमने की
स्पृहा है मेरे मन की ।

माँ की गोद में मीठी नींद की
ख्वाहिश है मेरी,
स्वप्न में परियों की साक्षी बनने की
स्पृहा है मेरे मन की ।

इन्ही सपनो में जन्मने की प्रतीक्षा में
थी मैं,
कि औजारों के बीच घुटने लगी
स्पृहा मेरे मन की ।

गौरांगी गुप्ता, छात्रा

ओह ! तो पिताजी के लिए बोझ बन गई
हूँ मैं,
माँ, मेरी प्यारी माँ भी समझ न सकी
स्पृहा मेरे मन की ।

जब देखना ही नही चाहते मेरे ईश्वर
मुस्कान मेरे मुख की,
तो शायद ही प्रार्थना में कह सकूँ
उस ईश्वर से
स्पृहा मेरे मन की ।

भीगने लगा है, दर्द भरे आंसुओं से
बदन मेरा अब,
कोई समझे और पोंछ दे कोमल हाथों से
यही स्पृहा है मेरे मन की।

एक बार, बस एक बार आने तो दो
इस दुनिया में मुझे,
शायद आपकी दुनिया को स्वर्ग बना दे
स्पृहा मेरे मन की ।

संस्कारों से सपनों का आशियाँ
सजाऊँगी मैं,
बस भर देना झोली मेरी आशीर्वाद भरे नेह से
स्पृहा यही मेरे मन की।

क्यारी की कोमल कली बन आपकी
बगिया को महकाऊँगी,
बस सींचने की जगह नष्ट कर न देना
स्पृहा मेरे मन की ।

दुनिया में देश का परचम लहराऊंगी,
उन्नति की द्योतक होंगी कन्याएं
है स्पृहा यही मेरे मन की ।

जीवन एक खेल

सुबह का समय था। रियाना अपने पालने में मस्ती में खेल रही थी, कभी वह अपने पर इतरा रही थी, तो कभी किलकारी भर रही थी। रियाना का पालना कभी दाएं से बाएं, तो कभी ऊपर से नीचे डोल रहा था। वह तितलियों को यहाँ से वहाँ उड़ता देखकर मन ही मन प्रसन्न हो रही थी। साथ ही, वह दर्पण में अपने चेहरे को देखकर मंद-मंद मुस्करा भी रही थी।

बाल-लीला में व्यस्त रियाना अचानक अपने नाना को पुकारती है - नाना! आप कहाँ हैं?

रियाना के स्वर में अंगरेजी, हिन्दी तथा कन्नड़ भाषा का मिश्रण था, उसकी भाषा को केवल उसके नाना ही समझ सकते थे। उसकी मौन अभिव्यक्ति को समझने के लिए उसके मम्मी, पापा और अन्य रिश्तेदारों को नाना की सहायता लेनी पड़ती थी। वहीं अन्य लोगों के लिए उसकी भाषा महज एक अर्थहीन शब्दों का क्रम था। उसकी बोली में मिठास थी और जब वह बोलती थी, तब मानो लगता था कोई पक्षी गीत गा रहा हो।

रियाना द्वारा पुकारे जाने के समय, नाना अपनी आरामदायक कुर्सी में बैठे हुए थे और अपनी पोती को खेलते हुए देख रहे थे।

नाना रियाना की बात सुनकर कहते हैं- हाँ! मैं तुम्हारे पास ही बैठा हुआ हूँ, तुम्हें देख पा रहा हूँ। और दोनों के बीच संवाद आरंभ हो जाता है -

नाना- वाह! तुम तो अपने पालने में बड़ी मस्ती में खेल रही हो।

रियाना- हाँ! जरूर

रियाना- नाना, एक बात पूछना चाहती हूँ।

नाना - हाँ, पूछो ।

रियाना- नाना, जो खेल मैं खेलती हूँ, क्या उनकी तरह मनुष्य का जीवन भी एक खेल है?

रियाना के सवाल को सुनकर नाना असहज हो जाते हैं। यद्यपि नाना के लिए इस प्रकार की बातें कोई नई नही थीं, क्योंकि उनके छात्र उन्हें उकसाने के लिए बहुधा ऐसे सवाल उनसे पूछा करते थे। ऐसे ही सवाल किया करते थे। क्या हम कक्षा में केवल दिखावा करके 'ए' ग्रेड

पा सकते हैं? क्या गृहकार्य एवं नियत कार्य करना अनिवार्य है? क्या आप इस बात के लिए गंभीर हैं कि हम कक्षा के दौरान अपने मोबाइल फोन बंद रखें? आदि...

नाना रियाना के सवाल का जवाब देने के लिए उसे जैक की कहानी सुनाते हैं। उनकी कहानी धीरे-धीरे आगे बढ़ती जाती है। नाना कहानी सुनाते समय इतने मशगूल हो जाते हैं कि वे भूल जाते हैं कि उनकी कहानी का अन्त कहाँ है। 'खेल' शब्द के नये अर्थ को लेकर कहानी में एक नया मोड़ आ जाता है। 'खेल' शब्द के गूढ़ अर्थ को स्पष्ट करने के लिए नाना जैक की कहानी को बीच में ही रोककर रियाना को अपने प्रिय अंग्रेजी लेखक शेक्सपियर के नाटक की कुछ पंक्तियाँ सुनाने लगते हैं कि -

सारा विश्व एक रंगमंच है, सभी मनुष्य इसके पात्र हैं
यहीं उनका जन्म हुआ है, यहीं वे मृत्यु को पाते हैं,
मनुष्य अपने जीवन-काल में, एक से अधिक रूपों में होता है
पहले, वह शिशु बनकर, धाय-माँ की बाँहों में कुनमुनाता है।
दूसरे, वह विद्यार्थी का रूप धारण कर लेता है,
जो केवल दूसरों की शिकायत करने में मगन रहता है,
प्रातःकाल अपना बस्ता टाँगे, घोंघे की तरह रेंगते हुए
उसका स्कूल जाना, उसके बालहठ को दर्शाता है।
फिर अपनी प्रेयसी के लिए विरह गीत गाने वाला प्रेमी बनकर,
वह अपने जीवन काल के सबसे रोमानी पलों का आनंद लेता है,
जहाँ उसे प्रतिक्षण सुख और दुःख का एहसास होता है।
कभी वह सैनिक बनकर जीने-मरने की सौगंध लेता है,
तो कभी वह चीते की भाँति खूंखार हो जाता है,
और दुश्मनों से भी सम्मान पाने की आशा करने लगता है।
इसके बाद वह न्याय की मूर्ति हो जाता है,

उसके शरीर में बड़ी-सी तोंद और झुर्रियाँ स्पष्ट नजर आने लगती हैं।
उसकी आँखों में संवेदना होती है,
उसके चेहरे में दाढ़ी फ़बती है,
वह बुद्धि-कौशल एवं आधुनिक विचारों से परिपूर्ण रहता है
जिसके बल पर वह निर्णय देता है। आगे, वह उस अवस्था में प्रवेश करता है,
जहाँ उसका शरीर शिथिल हो जाता है,
आँखों में चश्मा और बाजू में लटका हुआ थैला
उसकी पहचान बन जाते हैं।
उसकी पुरुषोचित आवाज़, नयेपन में कहीं गुम हो जाती है,
उसकी आवाज में पुनः बच्चे का-सा रोदन आ जाता है।
और अंत में,
मनुष्य की सक्रिय जीवन-लीला के अवसान का समय
आ जाता है,
वह पुनः शिशु का रूप धारण कर लेता है
जिसकी स्वादानुभूति, दृष्टि और सबकुछ
निष्छल हो जाते हैं।

नाना को यह देखकर खुशी हुई कि रियाना उनकी बातों को ध्यानपूर्वक सुन रही है। लेकिन कुछ देर बाद नाना को अहसास हुआ कि वे शायद कुछ ज्यादा ही बोल गए हैं, इसलिए वे मूल प्रश्न और जैक की कहानी पर तुरंत लौट आते हैं। अंत में, नाना की बातों का यही सार निकलता है कि मनुष्य के जीवन में दोनों कर्म और खेल(आमोद-प्रमोद) का समान महत्व है।

रियाना - नाना! मैं समझ गई ।
रियाना - लेकिन नाना, मेरी मम्मी अपने काम को बड़े आनन्द से करती हैं, मतलब उसमें भी खेल का मजा लेती हैं। तो, आप ऐसा क्यों नहीं कर सकते ?

नाना - हाँ, आप ऐसा कह सकती हैं, लेकिन मैं काम और खेल (आमोद-प्रमोद) को जीवन के दो अलग-अलग कार्य मानता हूँ।

रियाना - तो बताइए, क्या मुझे दूध पिलाना, मेरा डाइपर बदलना, मुझे स्नान कराना, लोरी सुनाकर मुझे सुलाना, इसे काम समझें या फिर कोई खेल।

तदनन्तर, वे बिना सोचे समझे कहते हैं-क्षमा करें, रियाना क्या हम अपनी बातचीत के विषय को बदल सकते हैं?
नाना रियाना के सवाल को सुनकर दुविधा में पड़ जाते हैं क्योंकि वे इन कार्यों को काम के रूप में नहीं देखते हैं
रियाना इसके लिए खुशी से तैयार हो जाती है और उनकी बातचीत का विषय दीपावली का त्यौहार हो जाता है।

नाना- रियाना, क्या आपने देश-विदेश में रहने वाले अपने परिवार के सदस्यों और विशेष रूप से अपनी चचेरी बहन शिवानी को दीपावली संदेश भेज दिया है।
रियाना- नाना आप जानते ही हैं, मुझे पढ़ना-लिखना नहीं आता है।

नाना पूरे विश्वास के साथ कहते हैं- आपको लिखना आए, यह जरूरी नहीं है। आप जिस प्रकार मौन रहकर भी मुझसे बातें कर सकती हैं, उसी प्रकार अपने इष्ट मित्रों को दीपावली संदेश भिजवा सकती हैं। इसके लिए आपको बस अपने मन में एक विचार संजोना होगा और फिर चेहरे पर एक प्यारी सी मुस्कराहट लानी होगी। ऐसा करने पर आपका ई-मेल एकाउन्ट खुल जाएगा; इसके बाद अपनी तर्जनी से हवा रूपी बटन को दबाना होगा; बटन दबाते ही प्रेषिती का पूरा पता आपके सामने होगा। पुनः अपने पैर की उंगली से एक और बटन दबाना होगा; इससे तुरंत बाक्स में सबजेक्ट आ जाएगा। पुनः अपनी बीच वाली उंगली से .....

"गुलाबी पंजे को दबाना होगा", रियाना अपने नाना की बात को काटते हुए कहती है।

नाना - हाँ, अपने छोटे से, गुलाबी पंजे को दबाना होगा"।
नाना आगे कहते हैं - रियाना, तुम्हें अपने विचारों को शब्दों में गढ़कर उसे टैक्स्ट स्पेस में कॉपी करना होगा; और अंत में अपनी उंगलियों से आखिरी बार क्लिक करने पर तुम्हारा संदेश सारी दुनिया में फैल जाएगा। लेकिन तुम्हें हम जैसे बूढ़े लोगों के साथ लिखित पत्राचार करना होगा।
रियाना यह सुनकर मुस्करा देती है क्योंकि वह यह सब जानती थी। वह लगातार अपनी उंगलियों को हिला-डुला रही थी।
इसके बाद, नाना और रियाना देश-विदेश में रहने वाले भारतीयों के जीवन के लक्ष्यों के बारे में चर्चा करने लगते हैं। वे, दीपावली, नववर्ष में भारतीयों को अपने जीवन में लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए क्या प्रण करने चाहिए, विषय पर बात-चीत करने लगते हैं।

रियाना - मैं जानती हूँ कि स्कूल में मुझे पहला लिखित कार्य किस विषय पर दिया जाएगा।
नाना- किस विषय पर।
रियाना - 'मेरे द्वारा नववर्ष में किया गया संकल्प' - इस विषय पर मुझे लिखने को कहा जाएगा।
रियाना - नाना, मेरे जीवन का लक्ष्य क्या होना चाहिए? नववर्ष में मेरा संकल्प क्या होना चाहिए?

नाना, रियाना के प्रश्नों को सुनकर खुश जाते हैं क्योंकि वे रियाना के जन्म लेने के दिन से ही उसके लक्ष्यों के विषय में सोचने को मजबूर हो गए थे। वे रियाना को परिवार में दुलार से बड़े होना देखना चाहते थे; वे चाहते थे कि रियाना विज्ञान, प्रौद्योगिकी, सामाजिक विज्ञान तथा मानविकी विषयों का उत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त करे। नाना की इच्छा थी कि रियाना हार्वर्ड, कॉर्नेल तथा प्रिंसटॉन विश्वविद्यालय से उपाधि प्राप्त करे, चिकित्सा के क्षेत्र में अपना नाम रोशन करे, देश के उच्च स्तरीय प्रशासन में राजनयिक के रूप में कार्य करे या यू.एस. कांग्रेस की सदस्य बने या रचनात्मक लेखिका बने। उसका दाम्पत्य जीवन सुखमय रहे और वह दो बच्चों की माँ बने।

नाना स्वयं के ध्वस्त हुए सपनों से जुड़ी बातें करके प्राणहीन हो जाते हैं और अपनी पोती को आशा भरी निगाह से देखते हुए कहते हैं - रियाना, अब तुमको निर्णय करना है कि तुम्हें क्या बनना है?

रियाना बड़ी मासूमियत से उत्तर देती है - नाना! ये सब तो काम ही काम हैं।

उसके उत्तर को सुनकर नाना अवाक् रह जाते हैं और कहते हैं - रियाना! बहुत अच्छा होगा कि तुम इन्हें खेल ही समझो और इनसे खूब आनंद प्राप्त करो। अंततोगत्वा नाना कर्म और खेल (आमोद-प्रमोद) को अलग-अलग मानने के अपने विचार को विस्मृत कर देते हैं।

डॉ. आइथल, पूर्व संकाय
अनुवाद - राजभाषा प्रकोष्ठ

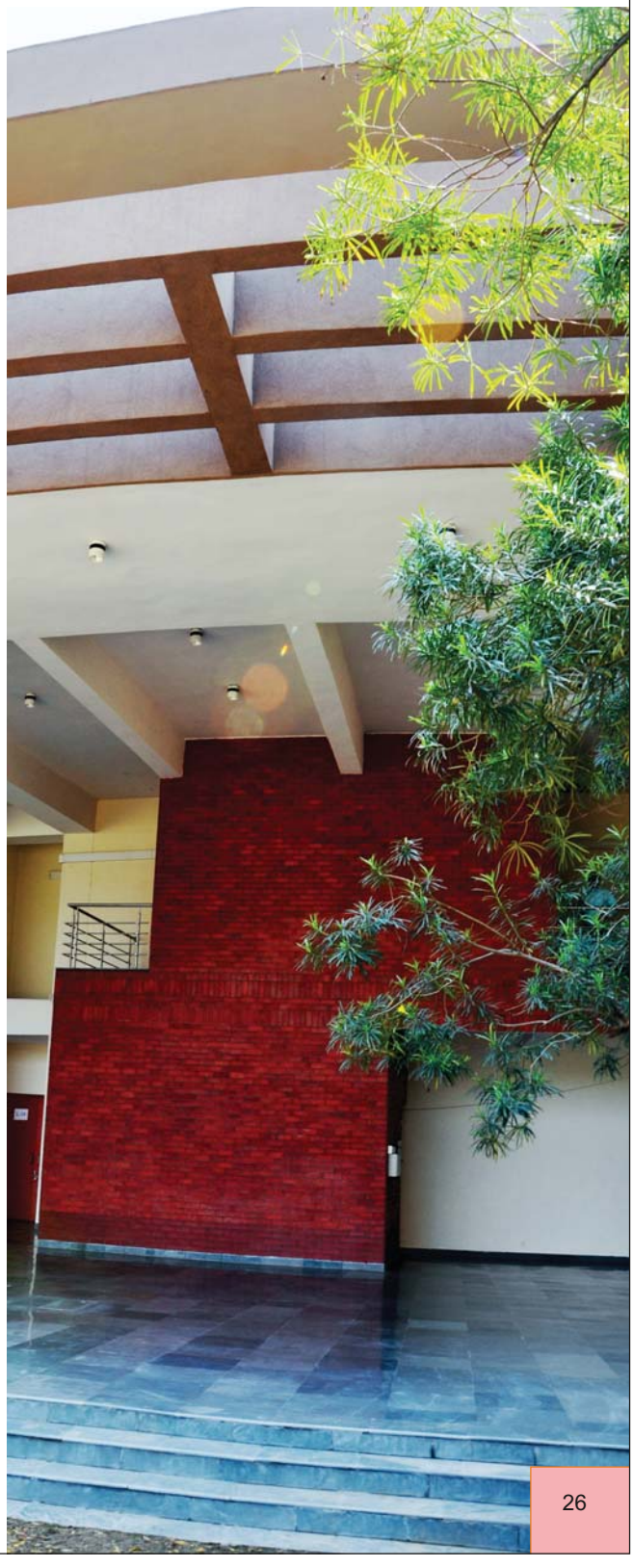

अकेलापन

कितना भयावह है ना?
किसी इंसान का एकदम
तनहा हो जाना।

बिल्कुल तनहा,
अकेला हो जाना।

बेबस,
निर्वाक हो जाना।

तड़पना, कलपना,
छटपटाना,
मगर खाली रह जाना।

सोचो, कि
बस कहते जाना, कहते जाना,
कहते जाना।

बार, बार,
बार, बार
फिर भी अनसुने रह जाना।

सोचो तो,
कितना भयावह है?

सिहर जाना अँधेरे में,
बेवजह ही।
घबराना,
खुद में ही सिमटते जाना।

कतरा-कतरा,
घुलते रहना,
फिर फ़ना जो जाना।

भीड़ में होना बेहद,
और खुद से ही खो जाना।

सोचो की अगर वो कहते रहे अपना तुमको,
और कदम दर कदम खुद से ही पराया होते जाना।

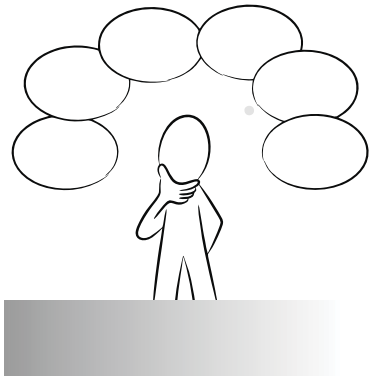

कितना भयावह होता है न,
चीख़ और चुप्पी का यूँ
ही यकायक हो जाना।

हारते जाना, लगातार,
बार-बार हारते जाना,

ठहाकों से सिसकियों का सहम जाना।

छोड़ो,
सोचो मत,
आओ!
वापिस लौट जाओ।

उसी भीड़ में,
जहाँ तुम भी अकेले हो,
और मैं भी।

डॉ. अर्क वर्मा

सत्य घटना

आहाते में बैठी थी वो मगन अपने पुत्र को निहारती,
सहसा ज्ञात हुआ उसको! कोई अपना छोड़ गया ये धरती।।
सोचते ही वह घबराई,
पुत्र से कुछ भी न कह पाई।।
पुत्र के समक्ष विलाप नहीं करना चाह रही थी,
अपने अश्रुओं को पोंछती जा रही थी।।
परन्तु पुत्र सब समझ गया ,
माँ को सांत्वना देकर अपनी आयु से ज्यादा कर गया।।
यह सब देख कर माँ आंसू रोक ना पाई,
परन्तु पुत्र की बाते उसमे आशाएं लेकर आई।।
कुल के दीपक ने अपनी माँ को सहारा दिया,
और आगे का जीवन सुचारू किया।।

दीपक गंगवार, छात्र

यादें

आज मेरी आँखें हैं कुछ नम

मन में है कुछ गम

मान सम्मान है हमने पाया

मैं उन्हें क्या दे पाया?

हमें इक दिन जाना था

फिर क्यों इतना प्रेम लगाना था?

बस एक मुसाफिर हूँ, वक्त के साथ

कुछ दिलों में यादें बन जाऊँगा

मोरों का ....., कोयल की कूँ कूँ

मीठी यादें लेकर वक्त यूँ ही गुजर जायेगा

ऐ मेरे दोस्तों तुम कभी आँखें नम न करना

कभी हमको भी याद करना

तुम इसी तरह आपना प्यार लुटाते रहना

प्यार लुटाते रहना...

कांति जैन

कांजीवरम कहाँ ?

आपके फेंके

शैम्पू की बोतल

टूथपेस्ट के ट्यूब

पाउडर के डब्बे

बेचकर

वो तेल मसाले लाती है

आपकी दी हुई बासी रोटी खाकर

अपना पेट भरती है

आपके टूटे सैंडल बदलकर

बच्चे का चप्पल लेती है

पर जब

आपकी फटी साड़ी पहनकर

झाड़ू लगाती है

आप कहने से नहीं चूकते ---

ज़रा स्टैण्डर्ड तो देखो,

कभी चंदेरी कभी कोटा साड़ी

डॉ अंजना पोद्दार

नारी

नारी को नाम और मान दिलाने के लिए ही हजारों सरकारी-गैर-सरकारी संस्थाएं कार्यरत हैं। विभिन्न कानून बनाए जा रहे हैं। नारी को उसका खोया हुआ नाम चाहिए। मान उसके अपने नाम से मिलना चाहिए। इसका यह मतलब कतई नहीं कि उसे किसी पुरुष की बेटी, किसी की पत्नी, माँ कहलाने पर एतराज होना चाहिए, लेकिन वह इन संबंधों के परे भी स्वयं एक व्यक्तित्व है। यह बात और है कि उसका व्यक्तित्व बेटी, पत्नी, माँ और अन्य रिश्तों से विशेष निखार पाता है। सजाया-संवारा जाता है। फैलाव लेता है। इसका अर्थ कदापि नहीं कि उसका स्वयं का नाम इन रिश्तों के बोझ-तले डूब-धंस जाए।

स-आभार डॉ मृदुला सिन्हा

मिट्टी की महक

ऐ मेरे गाँव की मिट्टी की सोंधी खुशबू
तेरी याद बहुत आती है
हर मुश्किल का संबल बनकर
जिन्दगी आज भी जहाँ मुस्कराती है
ओढ़े दामन हरियाली का
जहाँ धानी चूनर लहराती है
ओ जन्मभूमि ओ मातृ भूमि
तेरी याद बहुत आती है।

वो गलियां वो चौबारे
जहाँ लुकाछिपी हम करते थे
वो बगिया अपने आमों की
जहाँ दिन भर खेला करते थे
जहाँ नहर शारदा कल-कल कर
जीवन का गीत सुनाती है
मेरे गाँव की ऐ पावन धरती
तेरी याद बहुत आती है।

जहाँ नयी लालिमा सूरज की
हर दिन तरुणाई लाती है
कोयल की कू-कू मन में जब
एक जोश नया भर जाती है
जहाँ तपती धरती भी ठंडक दे
निजता का भान कराती है
ऐ शस्य श्यामला धरती माँ
तेरी याद बहुत आती है।

देखता हूँ पीछे मुड़कर जब
आँखे खुद नम हो जाती हैं
जहाँ बचपन बीता उन गलियों में
वो यादें मुझे लुभाती हैं
कितनी दूर निकल आये अब हम
वो खुशबू अब भी आती है
ओ जीवन दायिनी पुण्य धरा
तेरी याद बहुत आती है।

आम्र मंजरी की मोहक खुशबू
अब नहीं वहां पर आती है
न घरौंदे छप्पर वाले हैं
न शीतल बयार अब आती है
पर फिर भी अपनों की पूज्य भूमि
हर बार मुझे दुलराती है
मेरे गाँव के मिट्टी की सोंधी खुशबू
तेरी याद बहुत आती है।

डॉ राम नरेश त्रिपाठी

जोहार

रांची से वापस कानपुर आने के लिए ट्रेन टिकट पिछले साल मतलब 2015 की विदाई के समय ही बुक कर लिया था। क्या पता टिकट मिले न मिले, क्योंकि रांची से चलने वाली दर्जनों ट्रेनों को लगभग डेढ़ महीने के लिये रद्द कर दिया गया है। रद्द क्यों किया गया इसका कुछ पता नहीं। साथ ही दिल्ली आ रहे महीप उरांव, जिन्हें सौभाग्य से RAC टिकट मिल गया था, मेरी सीट जिस पर पहले से ही दो अन्य लोग बैठे हुए थे उनके बगल में अपना राशन का बोरा टिका कर बैठ गए। हाथ में खैनी रगड़ते हुए झल्लाकर बोले, ई ससुरा सरकार पब्लिक को इतना बुरबक बनाता है कि जिसका जबाबै नहीं है। कम्बर में सुताकर दिल्ली तक ले जायेगा और हजार रुपिया वसूल लेगा और हियां तो आज टीटीया बोल रहा है कि बैठ कर ही जाना पड़ेगा। अरे बैठना ही था तो चालू डिब्बा लगाना था ना, उसी से जाते क्या दिक्कत था बढ़िया से बुझते हैं हम ई सब रुपिया ऐठने का नवा-नवा तरीका है। बस महीप के इस झुंझलाहट ने एक साल पहले मतलब फरवरी 2015 में अपने पहला रिसर्च फील्डवर्क करके लौटे विकास की याद दिला दी, ठण्डे पड़ गए क्या वो गुस्सा झुंलझुलाहट और बेचैनी सब कहाँ गयी, ट्रेन की खिड़की पर टेक लगाकर मैंने अपने आप से यह सवाल पूछा और फिर एक गहरी साँस ली। दिमाग में सिर्फ यह सवाल ही था और सवाल इतना भारी भरकम था कि जवाब की उम्मीद रखने के लिए भी जगह नहीं बची थी।

मैं देश के उसी जाने माने तकनीकी संस्थान से रिसर्च कर रहा हूँ जहाँ एसी की छाँव में कम्प्यूटर स्क्रीन के सामने बैठकर रिसर्च में वैलिडिटी, रिलायबिलिटी और न्यूट्रलिटी का राग अलापने वाले रिसर्चर, जिन्हें अपने सुपरवाइजर से ज्यादा गूगल पर विश्वास रहता है, और अकैडमिशियंस की भरमार है। इन फ्रस्ट्रेटेड लोगों के उड़े हुए चेहरों और बेतरतीब बालों को देखकर लगेगा कि मेक इन इंडिया कार्यक्रम को सफल बनाने की पूरी जिम्मेदारी इन्हीं के सिर पर आ पड़ी है। कभी-कभार इनके साथ मुझे अपना फील्डवर्क एक्सपीरियंस उनके लिए एलियंस की कहानी के बराबर शेयर करने का मौका मिलता था। वास्तविकता को यथारूप प्रस्तुत करते-करते मेरे आक्रामक हो जाने वाले तेवर पर इस जमात की सिर्फ एक ही प्रतिक्रिया होती थी, क्या बात है, कम्यूनिस्ट होते जा रहे हो।

पिछले एक साल में देखा जाये तो बहुत कुछ बदला है जैसे मैं, मौसम

और मिज़ाज-ए-हुकूमत। 2 दिस्मबर, 2015 को झारखण्ड की रघुबर सरकार ने अपने एक वर्ष पूरे कर लिए हैं। उसी दिन रांची से प्रकाशित होने वाले लगभग सभी हिंदी और अंग्रेजी समाचार पत्रों के फ्रंट पेज का अधिग्रहण करके रघुवर सरकार ने पिछले एक साल में सरकार की उपलब्धियों को गिनाया। उसी से पता चला कि विश्व बैंक के द्वारा कराये गए सर्वेक्षण में झारखण्ड ने 63.07 स्कोर हासिल करते हुए सूची में लगभग नीचे से सीधे तीसरे स्थान पर छलांग लगायी है। राज्य में जमीन की खरीद-बिक्री और निवेश को बढ़ावा देने के लिए धड़ाधड़ वेब पोर्टल बन रहे हैं। बहुत कुछ कर दिया गया है।

RTI फाइल करने से लेकर पेड़ काटने के लिए आवेदन डालने तक सही भी है। जब पेड़ ही नहीं रहेंगे तो बिड़ला, टाटा और जिंदल को एनवायरामेंटल क्लीयरेंस लेने की औपचारिकता से भी छुटकारा मिल जायेगा। प्रोजेक्ट्स का स्पीडी इम्प्लीमेंटेशन जो करना है। पता नहीं बहुमत वाली सरकार दुबारा कब बने। शुचिता और स्वच्छता पर विशेष ध्यान देने वाली वर्तमान सरकार व्यवस्था को ट्रांसपेरेंट बनाने के लिए कमर कसे हुए है, घोषणा हो गयी है कि सब तरह का लीकेज रोकने के लिए लाभुक का पैसा सीधे उसके बैंक खाता में भेजा जायेगा। खाता खोलते समय बैंक के स्टॉफ ने ग्राहकों के विश्वास को हर तरह से बांधने के प्रयास में यह जानकारी भी मुहैया करा दी कि खाता में पैसा जमा होते ही खाताधारी के रजिस्टर्ड मोबाइल नंबर पर एसएमएस पहुँच जायेगा। उस नवनियुक्त बैंककर्मी, जिसने कभी गुमला जिला के पाठ इलाकों का दौरा नहीं किया है, को क्या मालूम कि पोलपोलपाठ में मोबाइल नेटवर्क का अता पता नहीं है।

किसी शनिवार के दिन डुम्बरपाठ बाज़ार घूमिये तब पता लगेगा कि यहाँ लोग मोबाइल में टॉप-अप रिचार्ज से ज्यादा नागपुरिया गाना

भराते हैं। लेकिन बन्दे असुर इन सब मामले में थोड़े तेज हैं। सुबह शाम पेड़ पर, टुंगरी-डीपा पर चढ़कर मैन्युअल सर्च करके नेटवर्क को खोज ही लेते हैं। अरे छत्तीसगढ़ का नेटवर्क सही बात करने से मतलब है ना। बन्दे असुर पिछले दो साल से एक एसएमएस का इंतजार कर रहे हैं जो अभी तक उनके मोबाइल पर नहीं पहुँचा है। उनका कहना है कि 2013 में नरेगा के तहत उनके गाँव में मोरम पथ बना था जिसमें वह 68 दिन खटे थे। हिसाब लगाए थे तो प्रति कार्यदिवस की दर से सरकार को कुल 8636 रुपये बन्दे के बैंक खाता में भेजना है।अब पैसे का तो पता नहीं लेकिन बन्दे को अपने मोबाइल पर एसएमएस का इंतज़ार अभी भी है। इसी बीच कम्पनी और सरकार बोले तो कम्पनी सरकार की नेकनीयत के चलते बॉक्साइट खदानों में काम करने वाले माइनर लोगों की मज़दूरी में रुपये का इजाफा हो गया है। बधाई हो।

धुत महराज कुछौ तो नहीं बदला है। अगर खुशफहमी में जीने के लिए बोल रहे हैं तो आपके प्रति मेरी पूरी सहानुभूति है। 1985 ईसवी से जारी पाठ क्षेत्रों में तथाकथित सड़कों, जिसे देखकर सड़क की परिभाषा गढ़ने वाला अपना सिर फोड़ ले, का आठ चक्का वाहनों यानि कि बॉक्साइट ढुलाई करने वाले ट्रकों द्वारा किये जा रहे बलात्कार थमने का नाम नहीं ले रहे हैं। ट्रकों की गर्जना और उनके पीछे उड़ते धूल के आतंक से सहमे यहाँ के आदिवासियों की सड़क से दूर पगडण्डी पर चलने की मजबूरी अभी भी बरकरार है। यहाँ सालों से मुस्तैदी से खड़े सखुआ पेड, जो शायद अब ज्यादा दिन खड़े नहीं रह पाएंगे, की पत्तियाँ विरोध में लाल हो चुकी हैं। खैर इससे ज्यादा और वे कुछ कर भी नहीं सकते हैं। पाठ के खदानों में मशीन और इंसान के बीच जंग जारी है कुछ लोग मशीनों के खिलाफ इस जंग में तय हार से मंडराते खतरे को देखते हुए हर साल की तरह रोपनी के बाद परिवार सहित ईंट भट्टा पर जाने के लिए बोरिया बिस्तर बाँधने लगे हैं। क्या बदला है यहाँ, कुछ भी तो नहीं, हाँ घरों की छत पर, काले पड़ चुके खपड़ों के बीच दो चार गेरुए रंग के नए खपड़ों ने अपनी जगह बना ली है। जंगल भी धीरे-धीरे ट्रांसपेरेंट होते जा रहे हैं जानवर तो बचे नहीं हैं। इंसान को असल में डर अब इंसान से ही है।

गाँव के माध्यमिक स्कूल में टिपुन जी अभी भी अकेले ही मिड-डे-मील से लेकर शिशुपंजिका जनगणना, मतगणना आदि नाना प्रकार के कामों में तन से, मन का पता नहीं, लगे हुए हैं। मौका मिलने पर बच्चों से पहाड़े और 'क' से कबूतर और 'ख' से खरगोश का शोरगुल करवाते रहते हैं। अब खिचड़ी खाना है तो कुछ तो करना ही होगा नहीं तो सब कोढ़िया बन जाएगा न। जाने क्यूँ कभी-कभी टिपुन जी और गाँव भर के मवेशियों को चराने की जिम्मेदारी उठाये सुखु बूढ़ा के बीच हैरान कर देने वाली समतुल्यता का बोध होता है। अंतर सिर्फ दोनों को अपने काम के बदले प्राप्त होने वाले मेहनताने और सम्मान में है। भदवा जी भी अम्बकोना प्राथमिक विद्यालय में डेपुटेशन पर बीते दिसंबर में ही 6 वर्ष पूरा कर लिए। वह सबसे यही बताकर सहानुभूति इकट्ठा कर रहे हैं कि जब डेपुटेशन की चिट्ठी मिली थी तो उसमें डेपुटेशन की अधिकतम अवधि सिर्फ छः महीने ही लिखी हुई थी। मुझे तो लगता है गलती लिखने में नहीं बल्कि समझने में हुई है। चलिए वैसे ज्यादा टेंशन लेने की जरूरत नहीं है भदवा जी हफ्ता में दो-चार दिन स्कूल जाकर झाड़ू वाड़ू लगवा कर चले आते हैं। ठीक है, एक्को बच्चा का ठेकान नहीं है तो क्या हुआ रजिस्टर में तो चालीस का नाम तो दर्ज है न और बच्चा स्कूल आये चाहे न आये स्कूल का तो देखभाल करना होगा की नहीं। हम से पूछिए तो बतायें बच्चों का ठिकाना। पांचवी कक्षा में आजकल सहेंद्र अकेले ही बैठता है बाकी बच्चों से मिलना है तो डाडीकोना वाले खंता में जाना होगा दो-ढाई घंटे में चार-पांच लड़के मिलकर ट्रक में टन बॉक्साइट लोड कर देते हैं। आजकल लोडिंग का एक गाड़ी के पीछे पैसे मिलते हैं स्कूल में रहेंगे तो सिर्फ खिचड़ी मिलेगा खंता में रहने से कम से कम डेढ़ सौ रुपया तो भेटाना ही है। इस द्वन्दात्मक स्थिति में सब्बल और हथौड़ा चलाने में सक्षम स्कूली लड़कों का निर्णय प्रायः तार्किक और मुनाफा केन्द्रित होता है। बाकी लड़कियों की बात करें तो नवंबर को चौथी कक्षा में पढ़ने वाली दो और एक पहले से ही पढ़ाई छोड़कर घर में बैठी पिछले साल की पालो गाँव की ही एक सरदारिन के साथ तड़के सुबह टोरी स्टेशन से दिल्ली की ट्रेन पकड़ने के लिए रवाना हो गयी। घर वालों को भी इस बात की जानकारी तब हुई जब शाम तक पानी की डेकची कुआँ से वापस घर नहीं पहुँची। परिजनों में हताशा-चिंता होगा जरूर शायद इज़हार न कर रहे हों। पुलिस थाना भी नहीं, यह पहली बार थोड़े ही हो रहा है, रोज की बात है दु-चार साल में घूम के तो फिर आएबा न करेगा।

अभी हरिहर की बेटी पूनम लौटकर आई न चार साल पर और चालीस हजार रुपया भी लायी साथ में। बाकी बचे वो बच्चे जिनकी

लम्बाई और वजन बॉक्साइट के बड़े पत्थर के लगभग बराबर होगी या फिर शहरों में बर्तन माँजने के लिए न्यूनतम अर्हता अभी हासिल नहीं कर सके हैं। इसलिए अभी उन्हें स्कूल की खिचड़ी से ही समझौता करना पड़ रहा है और मजदूरी के लिए उपयुक्त शरीर तैयार होने तक प्रतीक्षा करनी होगी। चिलचिलाती धूप हो या कनकनाती ठंड, छ साल के बुधेमन को आप हमेशा उसकी आसमानी कमीज़ (स्कूल यूनिफॉर्म) में ही देखेंगे। आजकल उसकी कमीज़ का एक बटन, ऊपर से पहला वाला, टूट गया है, इसलिए डेपुटेशन पर ऑलपिन को लगा दिया गया है। स्कूल में आने वाले इन बच्चों के नाम और चेहरे की बनावट को कुछ देर के लिए अगर नज़र अंदाज कर दें तो एहसास होगा कि इन सभी की जिंदगी की जानकारी और जिम्मेदारियों में एक भयंकर समानता है।

बिरसमुनी दीदी अभी भी हर दिन शाम में दरवाजे की चौखट पर बैठकर किसी का इंतज़ार करती हैं। शायद अपने इकलौते बेटे राजेश का, जिसे पुलिस अगस्त के महीने में पकड़ कर ले गयी थी। गुनाह यह था कि गाँव-घर की बहन-बेटियों के साथ पारामिलिट्री फोर्स के जवानों द्वारा किये जा रहे पैट्रीयाट्रिक रेप का विरोध करने के लिए राजेश ग्रामीणों को गोलबंद कर रहा था। दीदी के चेहरे पर पड़ी झुर्रियाँ और घर की दीवार पर गहराती दरारें, दोनों ही विश्वास के जर्जर होने की कहानी बयां करती हैं। जब भी दीदी से मिलता हूँ बुदबुदाते हुए स्वर में एक बात जरूर बोलती हैं मोर छौआ (लड़का) लाल सलाम नाम रहलौ। राजेश के संक्षिप्त आंदोलनकारी जीवन का अंत क्योंकि उसके जिंदा बचे होने का कोई सुराग नहीं है पाठ के बाकी संवेदनशील नवजवानों को बंदूक के खिलाफ कुछ न बोलने की शिक्षा दे गया। पंचायत भवन में इंडियन रिज़र्व बटालियन के जवानों का जमावड़ा और निर्माणाधीन आंगनबाड़ी केन्द्र का जवानों की रसोई में तब्दील होना इस बात का सबूत है। कुल मिलाकर मैं यही बताने की कोशिश कर रहा हूँ कि बदला कुछ भी नहीं है। अब आप अपना चश्मा ही बदल दिए हैं तो बात दूसरी है।

जनवरी की शाम धर्मेंदर असुर के साथ खंता से लौटते समय हाथ पैर धोने के लिए तालाब चले गए। यह तालाब कम्पनी और ठेकेदारों द्वारा किये जा रहे सीएसआर (CSR) गतिविधियों का एक गजब मिसाल है।

इस तालाब को निर्माणाधीन कहना गलत होगा क्योंकि इसका निर्माण तो कभी हुआ ही नहीं, यह तो दुर्घटनावश एक तालाब बन गया था। हुआ यूँ कि खनन के दौरान पानी निकल गया। परिणामस्वरूप गड्ढ़े की भरमार है जो सिर्फ बरसात के समय पानी जमा करके मच्छरों को आश्रय प्रदान करते हैं। तालाब के ठहरे हुये पानी में कनकनी काफी ज्यादा थी इसलिए आग सेंकने के लिए हम दोनों सीधे अखड़ा पहुँचे जहाँ पहले से ही आग की लपटों को केन्द्र बनाये कुछ अधेड़ किसी मुद्दे पर बहस कर रहे थे। बिना आग्रह के ही हम दोनों को भी बैठने के लिए वहाँ जगह मिल गयी और गोला बड़ा हो गया। यह सच है कि समावेश से चीजें बड़ी और विविध बन जाती हैं शाम के साढ़े सात बजे रेडियो पर बीबीसी हिंदी समाचार से पता लगा कि हैदराबाद विश्वविद्यालय के एक दलित रिसर्च स्कॉलर ने आत्महत्या कर ली है।

नाम था रोहित वेमुला। लेकिन यह नाम शायद जिंदा रहेगा क्योंकि वह जाते-जाते सहिष्णु और ठंडे पड़ चुके लोगों के नाम, यह मेरा मानना है, पहली और आखिरी चिट्ठी लिख गया। इस घटना ने खैरलांजी, लक्ष्मणपुर बाथे, कलिंगनगर, दादरी और न जाने कितने भौगोलिक संज्ञाओं को एक खूनी धागे में पिरो कर उनके बीच की सभी भिन्नताओं को खत्म कर दिया। समाचार में विश्लेषक रोहित के द्वारा की गई आत्महत्या की पड़ताल करते हुए बोल रहे थे कि रोहित के मस्तिष्क और शरीर के बीच एक दूरी पैदा हो गयी थी। जातिगत भेदभाव और सामाजिक उत्पीड़न के जकड़तंत्र ने उसकी जान ले ली। इन भारी भरकम शब्दों के मकड़जाल में फंसने से बचते हुए आग सेंक रहे परमेश्वर असुर ने बैठे-बैठे पीछे घूमकर खैनी को थूका और बोले, ई आतमहत्ता करेक का जरुरत है? हिंया पाठ में आई के कुछ दिन धूल गर्दा खाए आदमी वैसने खतम हो जायेगा। असुर जाति ऐसने थोड़े न गायब होता जा रहा है।

रोहित ने अपनी चिट्ठी में इस बात का जिक्र किया कि वह एक लेखक, एक महान वैज्ञानिक लेखक की तरह बनना चाहता था इस बात ने मुझे चौथी कक्षा में पढ़ने वाले नौ वर्षीय गौतम असुर के सपने, पहले खलासी फिर ड्राइवर बनना है, की याद दिला दी।

सच्चाई के धरातल पर रेंगती आदिवासियों की ये आकांक्षायें कहीं उन्हें आत्महत्या करने से रोक तो नहीं रही हैं? एक गंभीर सवाल है यह। कुछ बुद्धिजीवियों का मानना है कि आत्महत्या सहनशीलता की पराकाष्ठा है।

माफ़ कीजिएगा मैं इस बात से ज्यादा इत्तेफ़ाक नहीं रखता। संवेदनशील, इंसाफ पसंद रोहित की आत्महत्या एक विरोध है, विद्रोह

है एक व्यवस्था के खिलाफ, एक सोच और एक सभ्यता के खिलाफ। दुख सिर्फ इस बात का है कि आजकल खबरें सिर्फ तब तक परेशान करती हैं जब तक वे सुर्खियों में बनी रहती हैं कुछ राजनीतिक कारणों और कुछ इंस्टीट्यूशनल मर्डर होने की वजह से। रोहित के आत्महत्या की खबर कुछ ज्यादा दिनों तक सुर्खियों में बनी रह गयी। रोहित ने लिखा कि वह शून्य हो गया था। शून्यता निष्क्रियता की गारंटी नहीं देता है, रोहित द्वारा की गयी आत्महत्या इस बात का प्रमाण है।

यह रोहित की पहली और आखिरी चिट्ठी थी लेकिन इससे पहले भी न जाने कितनों ने हर दिन झेलते-झेलते सामान्य हो चुकी दर्द और यातना को शब्दों में उतारने की कोशिश की। कुछ पढ़ी भी गयी मगर खामोशी बरकरार रही। उन्हीं में से एक रुमझुम असुर की चिट्ठी भी है। ग्लोबन गाँव के देवता को प्राकृतिक संसाधनों से धनी झारखण्ड की धरती से खदेड़ने के उद्देश्य से लड़ाई लड़ रहे रुमझुम असुर ने तत्कालीन प्रधानमंत्री को उपन्यासकार रणेंद्र के माध्यम से एक चिट्ठी भेजी थी। विदेश से अर्थशास्त्र विषय में महारथ हासिल करके लौटे तत्कालीन प्रधानमंत्री को रुमझुम असुर सिर्फ यह बताना चाहते थे कि आदिवासियों के लिए उनकी जमीन और बेटियाँ भी बाजार में बेची जाने वाली कोई वस्तु नहीं हैं, बल्कि उनके अस्तित्व पहचान और संस्कृति का आधार है। लेकिन रुमझुम असुर को इस बात का पूरा भरोसा है कि तत्कालीन प्रधानमंत्री ने उनकी चिट्ठी नहीं पढ़ी होगी क्योंकि सरकार की दिलचस्पी ऐसी चिट्ठियों से ज्यादा कॉर्पोरेट घरानों के साथ होने वाले MOU के दस्तावेजों में होती है। रुमझुम असुर ने आत्महत्या नहीं की शायद इसलिए कि उन्हें मालूम था कि उनके आत्महत्या करने पर भी कोई उनकी चिट्ठी नहीं पढ़ेगा और न ही उनके द्वारा उठाये गए समस्याओं से संवेदनशील लोगों में कोई उबाल पैदा होगा और शायद इसलिए भी कि रुमझुम असुर को मौत में भी सुकून या कोई संभावना नज़र नहीं आई।

यह बात अब समझ में आती है कि आखिर रुमझुम असुर अल्कोहोलिक क्यों हो गए। यदि उस विश्लेषक की भाषा का प्रयोग करें तो यह कहा जा सकता है कि रुमझुम असुर का शरीर तो अभी भी जीवित है लेकिन मस्तिष्क मर चुका है। ऐसे ही हज़ारों विचारों की हत्या हर दिन हो रही है। कितनी शोक सभाएं आयोजित करेंगे और कौन आएगा? रुमझुम असुर अब दुबारा चिट्ठी नहीं लिखेंगे, सहनशील जो हो गए हैं।

समाचार में विश्लेषक जिस सामाजिक उत्पीड़न की बात कर रहा था, झारखण्ड के आदिवासी इलाकों में वह एक अतिसामान्य प्रघटना है जिसे वहाँ सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक ताने-बाने से अलग करना बड़ा ही मुश्किल प्रतीत होता है। प्रखंड से लेकर जिला के तमाम सरकारी दफ्तरों में मुश्किल से ही कोई आदिवासी अधिकारी या कर्मचारी मिलेगा और अगर कोई मिलेगा भी तो उसकी भाषा व व्यवहार के आधार पर उसे आदिवासी कहना आदिवासी दर्शन की अवहेलना होगी। दलालों के चंगुल में फंसकर इन्हीं सरकारी दफ्तरों का हर दिन चक्कर लगाने वाले आदिवासियों की पहचान लाभुक के रूप में सिमट कर रह गया है। सम्बोधन के लिए जगंली राकस, असभ्य, अशिष्ट, बेअदब और न जाने कितने अमानवीय शब्द आदिवासियों के आम-मर्रा की जिंदगी का हिस्सा इस कदर बन गए हैं कि उन्हें अपना व्यक्तिगत नाम बताने के लिए आधार कार्ड देखना पड़ता है। दिनभर मुख्यधारा की जानलेवा लहरों से झटके खाए, कभी-कभी बुरी तरह घायल भी, आदिवासी अँधेरा ओढ़े सन्नाटे की गोद में सोये हुए अपने गाँव में पहुँच कर बड़ा ही थकवास महसूस करते हैं। दो डुभनी हडिया मारने के बाद सब थकवास दूर हो जाता है। आदिवासियों की थकवास और हड़िया का सेवन रिसर्च का एक विषय हो सकता है। लेकिन मुद्दा पोलिटिकल इकोनॉमी का है न कि मनोविज्ञान का। इस पाठ अपने अकादमिक प्रवास के दौरान प्राप्त अनुभव के चलते मैं मुख्यत: दो साहित्यिक कृतियों को भावनात्मक रूप से स्वीकार कर पाता हूँ-पहला पचास के दशक में एक दर्दनाक प्रयोग करते हुए एक गोरे पत्रकार जॉन होवार्ड ग्रिफिन ने अपने शरीर का रंग बदल कर काला कर लिया था। उनका उद्देश्य अमरीका के एक हाईली सेग्रीगेटेड शहर न्यू ओर्लियंस में काले होने की वेदना को महसूस करना था। न्यू ओर्लियंस की गलियों और सार्वजानिक स्थानों में काले लोगों को छलनी कर देने वाले हेट स्टेयर के बारे में ग्रिफिन ने डायरी विधा में लिखी गयी अपनी पुस्तक 'ब्लैक लाइक मी' में उसी पीड़ादायी अनुभव की अदूषित व्याख्या की है। दूसरा लगभग साठ साल के अंतराल पर आज के नव-उदारवादी युग में संसाधनों की लूट मचा रहे मल्टीनेशनल कार्पोरेसंस द्वारा उनके एकमात्र शत्रु बन चुके आदिवासियों को नष्ट करने के लिए। आदिवासियो के दानवीकरण की प्रक्रिया की व्यथित कर देने वाली विवेचना रणेन्द्र ने अपने उपन्यास 'ग्लोबल गाँव के देवता' में बड़े ही जीवंत तरीके से प्रस्तुत की हैं। इन

दोनों कृतियों में अंतर सिर्फ देशकाल और भाषा का है लेकिन कथावस्तु समान है। ये दोनों कृतियाँ इस बात को सिद्ध करती हैं कि बदला कुछ भी नहीं है।

इसी बीच सामने वाली सीट पर लघुकालिक अधिकार के लिए तेज स्वर में महीप एवं अन्य यात्री के बीच हो रही बहस मेरे ध्यान को वापस चलती ट्रेन के डिब्बे में खींच ले आया आदिवासियों के राशन, रोजगार, राहत आदि मूलभूत मुद्दे तो ट्रिवियल इस्सूज हैं, इंटररेस्टिंग मुद्दा तो अमेरिका में चल रहा प्रेसिडेंशियल इलेक्शन है। यह सोचकर मैं अपने टचस्क्रीन मोबाइल पर यूएस प्रेसिडेंशियल इलेक्शन डिबेट के बारे में पढ़ने लगा। बदलाव और ठहराव के ऊहापोह ने मेरी संवेदनशीलता पर एक गहरा प्रहार किया है। बिरसमुनी दीदी की नम आँखें अब मुझे व्यथित नहीं करती हैं और न ही इस बात से परेशान होता हूँ कि पालो और बाकी बच्चियाँ दिल्ली में कैसी होंगी और उन्हें जिन्दा रहने के लिए क्या करना पड़ रहा होगा। यह सोचकर अब मैं देर रात तक बिस्तर पर करवटें भी नहीं बदलता कि जब आने वाले दस सालों में पाठ में बॉक्साइट खत्म हो जायेगा, जंगल नष्ट हो जायेंगे, नदियाँ सूख जाएंगी तब इन विलुप्तप्राय जनजातियों का क्या होगा और हाँ अब मेरे आक्रामक तेवर ठंडे पड़ गए हैं। अब मुझे गुस्सा नहीं आता और न ही बेचैनी होती है। मैं तो सहनशील हो गया हूँ। पाठ में पसरे सन्नाटे की तरह कुछ जो वैचारिक और सामाजिक रूप से मेरे करीबी हैं, उनका कहना है कि ये लक्षण सही नहीं हैं। कुछ बहुत ही भयंकर रूप से गड़बड़ है। अब मैं उन्हें कैसे समझाऊँ कि गड़बड़ी मुझमें नहीं बल्कि उनमें है। संवेदनशीलता नामक बीमारी के कुछ अंश उनमें अभी भी बचे हैं। एक बात और, ये जो पूरे देश में असहिष्णुता पर बवाल मचा हुआ है न, उसका एक्कै इलाज है, ऊ है हड़िया दो डुभनी हड़िया पिलाओ, सब सहिष्णु बन जायेंगे। अनुभव है मेरा इसीलिए दावे के साथ बोल रहा हूँ।

इस बार धान तो ज्यादा हुआ नहीं है इसलिए चिन्तामुनी दीदी बोली हैं कि मई में जब मैं दुबारा गाँव जाऊँगा तो वह मुझे गोंदली का हड़िया पिलायेंगी ऊ जादै चढ़ता है।

विकास दुबे, शोध छात्र

सशक्त महिला 'रंग'

सशक्त महिला रंग
होली तो प्रतीक है
त्रिकोणीय प्रहलाद-हिरण्यकश्यप
होलिका दन्त कथा की
होली तो प्रतीक है
बुराई पर अच्छाई की विजय की

गली-गली कूचे-कूचे
जलती हैं, ढेर सारी होलिकायें
उसके बाद आती है, रंग खेलने वाली होली
वह तो प्रतीक है, स्नेह एवं सच्चाई की

होली के रंग हैं, खुशियों के ढंग हैं
पर आजकल की होली
तो फीकी होली लगती है
इसीलिए कहती हूँ होली सो होली
होली तो प्रतीक है
त्रिकोणीय प्रहलाद-हिरणाकश्यप
होलिका दन्त कथा की

भारी विडम्बना है,
बलात्कार की चीख पुकार है
बलात्कार के बाद
जलते नहीं पुरुष
जलती है महिलाएं
इसीलिए दब गयी है, कहीं
हमारी गुजिया मिष्ठान वाली होली

क्या नैतिक मूल्यों से विहीन हो गया है समाज?
बढ़ती अमानवीय घटनाए कम करने का
कौन करेगा प्रयास ?
क्या तिल-तिल घुटती महिलाओं को सशक्त करना
फर्ज नहीं हमारा ?

क्यों दशहत में रह रही हैं, कुछ महिलाएं ?
आओ प्रयास करें
शुभ अवसर पर होली के
इन आलौकिक महिलाओं की जिन्दगी में
बेशुमार पिचक्कारियों से
सौहार्द के प्रतीकात्मक
सुन्दर रंग, तुरन्त भर दें।

इनको सुशिक्षा के लिये
सुन्दर सुरक्षित माहौल दें,
साथ खड़े हो, इनके सुख, दुख में
सहयोग दें, उन्हें अपने
पैरों पर, खड़े होने में।

तभी तो अमानवता से शोषित
महिलाओं का दुख कुछ कम होगा
मानवीय गुलाल अबीर के बिखरते
इन्द्र धनुषीय रंगों से
प्रत्येक महिला के मन का बोझ
विजय उल्लास एवं सुकून में
परिवर्तित होगा।

तभी तो होली का सच्चा रंग
शोषित एवं पीड़ित महिला के
सशक्तिकरण की, नींव का
पक्का, प्रेरक रंग होगा।

डॉ. सुकर्मा रानी थरेजा

''राष्ट्रभाषा राष्ट्र का गौरव है इसे अपनाना और इसकी अभिवृद्धि करना हमारा राष्ट्रीय कर्तव्य है। यह राष्ट्र की एकता और अखंडता की नींव है। आओ, इसे सुदृढ़ बनाकर राष्ट्ररूपी भवन की सुरक्षा करें।''

लोकमान्य तिलक

आई आई टी कानपुर में हिन्दी की अनौपचारिक कक्षाएं

हिन्दी साहित्य सभा स्टूडेन्ट जिमखाना की एक सांस्कृतिक इकाई है। राजभाषा प्रकोष्ठ और कतिपय प्राध्यापकों के सहयोग से हिन्दी साहित्य सभा एक लंबे समय से परिसर में हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार तथा आई आई टी छात्रों में हिन्दी लेखन, मंचन और अभिव्यक्ति को प्रोत्साहन देने के लिए कार्य करती रही है। छात्रों के वार्षिक उत्सव 'अंतराग्नि'– में हिन्दी प्रतियोगिताएं और राष्ट्रीय स्तर के कवि सम्मेलन आदि आयोजित करने में हिन्दी साहित्य सभा की महती भूमिका है। जिन लोगों को भाषागत अनभिज्ञता के कारण हिंदी में बातचीत करने में परेशानी होती है, विशेषकर विदेशी छात्रों और दक्षिण भारत के छात्रों को, उनकी मदद करना ही इन कक्षाओं को संचालित करने का उद्देश्य है। ग्रीष्म सत्र में जब विद्यार्थी लगभग खाली रहते हैं अथवा एक या दो कोर्स ही करते हैं, उस समय इस प्रकार के प्रयास अधिक सफल रहते हैं। इसके लिए कुछ वरिष्ठ छात्रों ने पहले तो स्वयं हिन्दी के पाठ विकसित किए और फिर उनके माध्यम से हिन्दी कक्षाएं आयोजित कीं। हिन्दी साहित्य सभा के इन प्रयासों से हम एक बात अच्छी तरह से सीख सकते हैं कि हिन्दी को प्रोत्साहित करने का काम अनौपचारिक और स्वैच्छिक ढंग से करने की आवश्यकता है। यदि सरकार या प्रशासन की ओर से कोई चीज लादी जाती है तो विरोध होता है, किन्तु जब जनता की मांग के अनुसार स्वैच्छिक ढंग से कोई कार्य किया जाता है तो उसमें सफलता की संभावनाएँ अधिक रहती हैं। आई आई टी कानपुर सहयोग और सम्मति के आधार पर राजभाषा को प्रोत्साहित करने के लिए प्रतिबद्ध है।

राजभाषा प्रकोष्ठ हिन्दी साहित्य सभा के इन विद्यार्थियों के इस महत्वपूर्ण प्रयास की सराहना करता है और उन्हें बधाई देता है।

छायाचित्र

श्री हामिद करजई, पूर्व राष्ट्रपति अफगानिस्तान

योग दिवस

'वातानुकूलन' का मतलब सिर्फ ठंडा नही होता है

स्वयं का विवेक एवं बुद्धि, बाजारीकरण से द्वन्द्वात्मक स्थिति में होने के कारण पृष्ठभूमि में चला गया प्रतीत होता है। यह सही है कि मनुष्य को सुखद स्थिति में रहने में सहजता तथा सुख का अनुभव होता है परन्तु इस सहजता एवं सुखद स्थिति की सीमा का मूल्यांकन करके उसे न्यायोचित बिंदु तक रखना भी मनुष्य का ही दायित्व है। वातानुकूलन हेतु प्रयुक्त ए.सी. मशीन भी मनुष्य को 'सुखद स्थिति' में रखने में सहयोग कर सकती है, परन्तु इस 'सुखद स्थिति' के द्वारा प्राकृतिक सीमाओं के अतिक्रमण का मूल्यांकन करते रहना भी मानव हित में है। इस लेख का उद्देश्य पाठकों को ए.सी. के उपयोग एवं आवश्यकता के सन्दर्भ में मूलभूत जानकारी प्रदान करना है ताकि समाज तथा साथ ही साथ प्रकृति के प्रति समन्वय स्थापित करने में सहायता की जा सके।

वातानुकूलन या ए.सी. क्या होता है? : हम सुनते है कि वातानुकूलन या एयर कंडीशनिंग (ए.सी.) वह मशीन होती है जो किसी निश्चित स्थान या कमरे को ठंडा करने के लिए उपयोग में लाई जाती है परन्तु वास्तव में ए.सी. वह मशीन होती है जो किसी निश्चित स्थान का तापमान, वायु में नमी की मात्रा (आर्द्रता), ध्वनि, वायु की शुद्धता, वायु का परिसंचरण, वायु का वेग एवं बैक्टीरिया आदि का नियंत्रण करने का कार्य करने के लिए उपयोग में लाई जाती है। किसी नियत स्थान में से नमी की मात्रा को सोख कर कमरे से बाहर निकालने का कार्य भी यह मशीन करती है, इसे डिह्यूमिडिफिकेशन (dehumidification) प्रक्रिया कहते है। भारत के गर्म एवं आर्द्र प्रदेशों में ए.सी. का उपयोग इसी रूप में किये जाने का प्रचलन है। बहुधा सर्दियों के मौसम में सर्दी से बचने के लिए आग या हीटर का आश्रय लिया जाता है। भारतीय समाज में ए.सी. को अभी तक आवश्यकता के रूप में कम एवं विलासिता के संसाधन के रूप में अधिक देखा जाता रहा है। यही कारण है कि कुछ लोग ए.सी. को अपने घरों में इसलिए लगवा रहे हैं कि यह प्रतिष्ठा का प्रतीक बन गया है, यदि पड़ोसी के यहाँ छोटा ए.सी. लगा है तो हम उससे बड़ा लगवाएंगे या और महंगा लगवाएंगे इस तरह वे स्वयं को दूसरों से श्रेष्ठ सिद्ध करने के थोथे एवं असार्थक प्रयास में लिप्त दिखते हैं। तथ्य यह है कि प्रतिस्पर्धा के इस दौर ने जहाँ आवश्यकता एवं उपभोग में अंतर करने की समझ का शमन किया है वही यह मानव को प्राकृतिक जीवन से दूर भी कर रहा है।

ए.सी. का उपयोग : हम जिस वातावरण में रहते हैं यदि उसमें नमी की मात्रा 60 प्रतिशत से अधिक हो जाए तो ऐसी स्थिति को उमस कहा जाता है। 'उमस' भरे वातावरण में वायु में ऑक्सीजन की मात्रा कम हो जाती है तथा तापमान भी 30°C से अधिक हो तो मनुष्य असहज महसूस करने लगते हैं। इसके विपरीत, यदि वातावरण में नमी की मात्रा 65 प्रतिशत से कम हो एवं तापमान भी 30°C से अधिक हो तो ऐसे स्थान में पानी की मात्रा (नमी) कम हो जाने से मनुष्य शुष्कता एवं सूखी गर्मी के कारण असहज महसूस करते हैं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि ए.सी. का उपयोग, वातावरण में नमी की मात्रा 65 प्रतिशत से अधिक तथा तापमान 30°C से ऊपर होने पर किया जाना ही सार्थक है। खुश्क मौसम में पसीना भी कम आता है लेकिन यदि हम साइकिल चलाकर या पैदल चलते हैं तो हल्का पसीना आ जाता है। महसूस कीजिये कि आपको गर्मी के सूखे (खुश्क) मौसम में पसीना आया हो और थोड़ी सी हवा लगी हो तो यह पसीना कितनी सुखद एहसास करवाता है? या कभी मई–जून के खुश्क मौसम में हल्की सी बारिश की बौछार के बाद चलने वाली हवा कितनी शीतलता प्रदान करती है। यही प्रकृति का आनंद है गर्मी को एहसास किये बिना मनुष्य सर्दी का आनंद पूर्णतः नही ले सकता है। जरा सोचिये!

शोध प्रयोगशालाओं में उपयोग होने वाले संवेदनशील इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों के लिए, हालाँकि, उपरोक्त स्थितियां भिन्न होती हैं, परन्तु इन उपकरणों का तापमान भी 25°C के आसपास रखना ही न्यायोचित है। हमने प्रयोशालाओं में उच्च श्रेणी के उपकरणों (high accuracy equipments) को 25°C एवं 30°C तापमान पर भली–भांति कार्य करते हुए कार्य सफलतापूर्वक संपादित किये हैं। वहीं पर हमने यह भी प्रेक्षण किया है कि अनेक प्रयोगशालाओं में उपकरणों को 20°C के तापमान के आसपास रखने की प्रवृत्ति है जिससे इन प्रयोगशालाओं में कार्य करने वाले

छात्रों एवं कार्मिकों को स्वास्थ्य सम्बंधित अनेक समस्याएं उत्पन्न होती देखी गई हैं। उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि ए.सी. का उपयोग उच्च आर्द्रता वाले महीनों (15 जून से 15 अगस्त) में करना तर्कसंगत है तथा मनुष्य एवं मशीनों या उपकरणों के लिए 25°C तापमान रखना सुखद होता है।

पूर्ण ए. सी. का अर्थ : ए.सी. की संक्षिप्त परिभाषा आधुनिक ए.सी. के अविष्कारक एवं जनक माने जाने वाले विलिस कैरियर ने प्रथम बार सन् 1908 में निम्नलिखित ढ़ंग से दी थी:

- किसी भवन में नमी की उपर्युक्त मात्रा बनाकर रखना।
- किसी मौसम विशेष (बरसात) में अत्यधिक नमी को कम रखना।
- भवन में शुद्ध वायु की पर्याप्त एवं निरंतर आपूर्ति करना।
- वायु में से सूक्ष्म जीव (बेक्टीरिया आदि), धूल एवं अन्य अवांछित बाहरी अशुद्धियों को हटाना।
- गर्मी के मौसम में कमरे का तापमान ठंडा रखना। (Cooling)
- सर्दी के मौसम में कमरे का तापमान गर्म रखना। (Warming)
- कैरियर कंपनी ने ए.सी. मशीन का उपयोग, प्रिंटिंग प्रेस की नमी को कम करने के लिए किया था क्योंकि उन दिनों नम मौसम में प्रिंटिंग की गुणवत्ता खराब हो जाती थी तथा कागज पर स्याही फैल जाती थी।

100 वर्ष बीत जाने के उपरान्त भी ए.सी.का अर्थ अधिकांशतः कमरा ठंडा करने वाली मशीन के रूप में ही किया जा रहा है उपभोक्ता एवं पर्यावरण को अनेकानेक दुष्परिणाम भुगतने पड़ रहे हैं साथ ही मनुष्य अनेक बीमारियों का शिकार होकर अकारण ही औषधियों के ऊपर आश्रित होते जा रहे हैं। इस प्रकार के उपभोक्तावाद के कारण मनुष्य ने स्वयं की आर्थिक एवं शारीरिक रूप से अपूर्णीय क्षति तो की ही है साथ ही ऊर्जा के गंभीर संकट को लाकर समाज के सामने खड़ा कर लिया है। ऊर्जा के इस संकट से सम्पूर्ण विश्व ही जूझ रहा है जिससे कोई भी मनुष्य इस संकट से प्रभावित हुए बिना नही रह सकता।

ए.सी. सिस्टम की कार्य प्रणाली : सभी प्रकार की ए.सी. मशीनें या सिस्टम, वेपर कम्प्रेशन सिद्धांत (vapor compression system) पर कार्य करते हैं। रेफ्रिजरेन्ट के वाष्पीकरण (vaporization of refrigerant) के कारण शीतलन प्रभाव उत्पन्न होता है। ए.सी. मशीनों में चार प्रमुख अंगों का उपयोग किया जाता है– कंप्रेसर, कंडेंसर, एक्सपेंशन वाल्व एवं इवेपोरेटर या कूलिंग कॉयल। मोटे तौर पर कहा जाये तो कंप्रेसर के चलने से कंडेंसर, कमरे की गर्मी को कमरे से बाहर निकालकर फेंकता है जबकि कूलिंग कॉयल पर कम ताप होने के कारण ठंडक का प्रभाव कमरे के अन्दर एक पंखे या फैन मोटर (fan motor) की सहायता से परिसंचरित होता रहता है। एयर कंडीशनिंग तीन प्रकार के सिस्टम द्वारा की जाती है: विंडो एवं स्प्लिट, पैकेज्ड, सेंट्रल ए.सी.।

ए.सी. में प्रयुक्त गैस या रेफ्रिजरेंट : ए.सी. मशीन में कार्यकारी पदार्थ के रूप में जिस गैस का उपयोग किया जाता है उसे रेफ्रिजरेंट कहते हैं। हमारे वातावरण को प्रदूषित करने वाले मुख्य पदार्थों में जीवाश्म ईधनों के दहन से उत्पन्न हुआ धुये एवं रेफ्रिजरेंट गैसों के उत्सर्जन की प्रमुख भूमिका होती है। रेफ्रिजरेटर एवं ए.सी. मशीनों में अभी तक क्रमशः आर–12 एवं आर–22 गैस का उपयोग हो रहा है।

संभावित ग्लोबल वार्मिंग (Global Warming Potential, GWP) : आज के समय में सम्पूर्ण विश्व "ग्लोबल वार्मिंग" की भयंकर चेतावनियों को महसूस कर रहा है। "ग्लोबल वार्मिंग" हमारे वातावरण के समग्र तापमान बढ़ने का द्योतक है जिसके कारण हिमपर्वत की हिम तेजी से पिघल रही है एवं समुद्र का जल स्तर भी बढ़ रहा है। ग्लोबल वार्मिंग का प्रमुख कारण ग्रीन हाउस गैसों का हमारे वायुमंडल में उत्सर्जन होना है। ये ग्रीन हाउस गैसें (कार्बन इाई ऑक्साइड CO_2), मीथेन, नाइट्रस ऑक्साइड, हाइड्रोफ्लोरोकार्बन एवं सल्फर

हैक्साफ्लोराइड आदि) वायुमंडल में धुएं की एक चादर बनाकर सूर्य की गर्मी के प्राकृतिक संचरण को प्रभावित करके पृथ्वी की सहत का तापमान बढ़ाने के लिए उत्तरदायी होती है। GWP, ग्लोबल वार्मिंग का वह मात्रक है जो 1 kg रेफ्रिजरेंट के रिसाव होने पर 1 kg CO_2 के रिसाव के बराबर तुलनात्मक मान होता है। अर्थात GWP, ग्रीन हाउस गैसों द्वारा, वायुमंडल में गर्मी रोकने की माप होती है जिसका मान CO_2 के लिए 1 होता है। एक लीटर पेट्रोल के दहन से 2.3 तथा एक लीटर डीजल के दहन से 2.7 kg CO_2 गैस का उत्सर्जन होता है। वैश्विक स्तर पर ग्लोबल वार्मिंग बढ़ने का कारण जीवाश्म ईंधनों का दहन एवं ए.सी. एवं ए.सी. में प्रयुक्त रेफ्रिजरेंट का रिसाव होना है। भारत में विद्युत ऊर्जा का 70 प्रतिशत से अधिक उत्पादन जीवाश्म ईंधनों से ही होता है।

ए.सी.का उपयोग एवं ग्लोबल वार्मिंग : ए.सी. को चलाने के लिए जो बिजली, ऊर्जा सयंत्र (thermal power plants) में कोयला जलाकर उत्पन्न की जाती है उसमें एक यूनिट बिजली बनाने में लगभग 1 kg CO_2 गैस का उत्सर्जन होता है। अंतर्राष्ट्रीय ऊर्जा एजेंसी (International Energy Agency) के अनुसार विद्युत उत्पादन एवं जीवाश्म ईंधनों के दहन से सर्वाधिक CO_2 का उत्सर्जन हो रहा है। भारत, विश्व में CO_2 के उत्सर्जन में अग्रणी देशों में से एक है। यह उत्सर्जन 1971 में भारत में 200 मिलियन टन जबकि 2011 में बढ़कर 1745 मिलियन टन CO_2 हो गया है। जबकि जर्मनी 1971 में 554 तथा 2011 में घटकर 311 मिलियन टन CO_2 उत्सर्जन पर आ चुका है। फ्रांस, पोलैंड एवं इंग्लैण्ड ने भी इसी प्रकार कार्बन उत्सर्जन कम किया है जो उनकी जागरूकता एवं भविष्य के प्रति गंभीरता को इंगित करता है। टेबल–1 में 1 kg रेफ्रिजरेंट के वातावरण में रिसाव होने के कारण होने वाले GWP की दर को दर्शाया गया है। उदाहरणतः यदि आपने एक टन का ए.सी एक घंटे के लिए चलाया है तो आप 1 KWH बिजली खर्च करते हैं जो कि 1 kg,CO_2 को वातावरण में भेजकर वातावरण को गर्म कर रही है। इसी प्रकार जब हम अपने वाहन में एक लीटर पेट्रोल या डीजल जला कर कुछ किलोमीटर की दूरी तय करते हैं तो लगभग 2.5 kg, CO_2 वातावरण में छोड़ते हैं। यदि एक टन का ए.सी. एक दिन में लगभग 8 घंटे तक उपयोग किया जाए तो 8 kg, CO_2 वातावरण में चली जाएगी। ए.सी. के सम्बन्ध में अन्य सोचनीय तथ्य यह है कि एक ए.सी. की औसत आयु 12 वर्ष होती है। 12 वर्ष के औसत समयोपरांत ए.सी. की गैस या रेफ्रिजरेंट का वायुमंडल में रिसाव किया जाता है क्योंकि उसे पुनः उपयोग में नहीं (non-recycle) लाया जा सकता। यदि एक घरेलू ए.सी. में 500 gm रेफ्रिजरेंट था तो इससे लगभग 750 kg CO_2 वातावरण में जाएगी।

हमारे संस्थान में 1.5 एवं 2.0 टन के लगभग 1500 ए.सी लगे हुए हैं। यदि ये सभी रोजाना 8 घंटे उपभोग किये जा रहे हों तो निम्नलिखित प्रकार से उत्सर्जन एवं विद्युत खर्च होगा :

बिजली के यूनिट = कुल ए.सी. x चलाये गए घंटे x लिया गया करंट 1500 x 8 x 5 एम्पियर = 60000 यूनिट

बिजली पर कुल व्यय = 60000x7 रूपए/यूनिट = 420000 प्रतिदिन

60000 यूनिट बिजली बनाते समय उत्सर्जित CO_2 की मात्रा = 60000 kg लगभग

यदि पूरे संस्थान के ए.सी. का लोड लेकर गणना की जाये तो आंकड़े निम्नवत होंगे :

ए.सी. का कुल लोड = 6000 टन तथा खर्च हुई बिजली = 6000 x 5 = 30000 यूनिट प्रति घंटा

30000 यूनिट बिजली बनाने में उत्सर्जित CO2 की मात्रा = 30000 x 8 = 240000 kg प्रतिदिन

12 वर्ष पश्चात 6000 टन क्षमता के ए.सी. से निकले रेफ्रिजरेंट R-22 के कारण वातवरण में गयी CO_2 की मात्रा = 6000 x 0.5 x 1500 (प्रति टन ए.सी. में रेफ्रिजरेंट की मात्रा) = 45,00,000 करोड़ kg CO_2

(1 kg R-22 के रिसाव के कारण हुई GWP का मान 1500

होता है जबकि एक टन के ए.सी. में लगभग पाँच किलो वाट गैस होती है)

गर्मी से बचने के लिए जिस ए.सी. का उपयोग हम कर रहे हैं वह वातावरण को इस कदर नुकसान पहुंचा रहा है कि आपने कल्पना भी नहीं की होगी अतः स्वयं, भावी पीढ़ी और बच्चों के हित में ए.सी. का उपभोग करने से पहले ऊर्जा संरक्षण के बारे में एक बार अवश्य ही विचार करके अपनी जागरूकता का सरल परिचय देने में ही समझदारी है।

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि यदि एक किलो रेफ्रिजरेंट (R-12) का रिसाव वातावरण में हो जाए तो यह 8100 kg CO_2 के उत्सर्जन के समतुल्य होता है। तथा यदि R-22 की एक किलो मात्रा वातावरण में रिस जाती है तो यह 1500, kg CO_2 के समतुल्य वातावरण को प्रदूषण करती है।

ए.सी. का बढ़ता उपभोग : आकलनों से अंदाजा लगाया जा रहा है कि सन् 2030 तक भारत की लगभग 70 प्रतिशत आबादी ए.सी. का उपयोग करने लगेगी अर्थात ए.सी. के उपयोग एवं चयन पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। यह भी यथार्थ है कि आज के समय में ए.सी. के उपभोग एवं उपयोग को नकार नहीं सकते। इसी कारण ए.सी. का चयन करते समय ब्यूरो ऑफ एनर्जी एफिसियांसी (Bureau of Energy Efficiency) द्वारा निर्धारित स्टार रेटिंग हीटिंग एवं कूलिंग मोड (heating and cooling mode) वाले ए.सी. को ही प्राथमिकता देना लाभकारी होता है।

हीटिंग एवं कूलिंग मोड ए.सी. (Heating and cooling mode) :यह ए.सी. भी, बिल्कुल, सामान्य ए.सी. की तरह का होता है परन्तु इसको सर्दियों के मौसम में कमरे के अन्दर के तापमान को बढ़ाकर गर्म रखने के लिए भी प्रयोग किया जा सकता है। सामान्य ए.सी. की तुलना में इसका मूल्य 10–15% अधिक अवश्य होता है परन्तु इस ए.सी के द्वारा उत्पन्न की गयी ऊष्मा सामान्य रूम हीटर से तीन गुना अधिक होती है। एक किलोवाट बिजली की मात्रा खर्च करके तीन किलोवाट के समतुल्य उष्मीय मात्रा प्राप्त की जा सकती है। इस ए.सी. का दूसरा बड़ा लाभ यह है कि यह ऊष्मा को उस तरह उत्पन्न नहीं करता जैसे कि हीटर विद्युत ऊर्जा को ऊष्मा ऊर्जा में परिवर्तित करके करता है बल्कि कमरे के अन्दर व्याप्त, वातावरण की गर्मी को रिवर्स साइकिलिंग मोड द्वारा वांछित तापमान के स्तर पर कंडीशनर कर देता है। इस प्रकार इस ए.सी. के उपयोग से कमरे को गर्म करने के लिए इलेक्ट्रिक हीटर की तुलना में एक तिहाई बिजली ही खर्च होती है।

हीटिंग एवं कूलिंग मोड ए.सी. की कार्य प्रणाली : हीटिंग एवं कूलिंग मोड ए.सी. को हीट पंप भी कहा जाता है। यह मशीन है जो कमरे की गर्मी को बाहर निकालने का कार्य करती है अर्थात ए.सी. मशीन एक स्थान से दूसरे स्थान तक ऊष्मा अंतरण का कार्य करती है। यदि कूलिंग क्वायल को कंडेंसर में बदल दिया जाए तो कमरे का तापमान बढ़कर, कमरा अन्दर से गर्म होने लगता है। इसी को रिवर्स साइकिल ए.सी. कहा जाता है। इस तरह से कार्य करवाने के लिए एक रिवर्स वाल्व का अतिरिक्त उपयोग किया जाता है। यह वाल्व बिजली के स्विच के जरिये कार्य करता है। यह स्विच कन्ट्रोल पैनल पर ही लगा रहता है। जब ए.सी. को कूलिंग मोड में चलाना हो तो स्विच "कूलिंग मोड" तथा यदि हीटिंग मोड में चलाना हो तो स्विच को हीटिंग मोड की स्थिति में कर दिया जाता है। यह ए.सी. कूलिंग मोड में चलते समय कमरे के अन्दर ठंडी हवा तथा कमरे से बाहर गर्म हवा अंतरित कर रहा है। यही ए.सी. एक सामान्य रिवर्स वाल्व लगाकर हीटिंग मोड में कार्य करने के योग्य परिवर्तित हो जाता है।

चित्र 2 में यही ए.सी. हीटिंग मोड में कार्य करते समय कमरे के अन्दर गर्म हवा तथा कमरे से बाहर ठंडी हवा अंतरित करता रहता है। तकनीकी रूप से रिवर्स साइकिल ए.सी. में कंडेंसर एवं कूलिंग कॉयल को आपस में कार्य के आधार पर आवश्यकतानुसार परिवर्तित करने की व्यवस्था होती है।

ए.सी. प्रयोग करते समय ध्यान देने योग्य मुख्य बिन्दुः

- गर्मियों के मौसम (मई–जून) में इवैपोरेटिव एयर कूलर का प्रयोग करने से बिजली की बचत होती है। एयर कूलर में प्रायः लगभग 200 वाट की मोटर लगी होती है जो की 10 घंटे चलने पर मात्र 2 यूनिट बिजली की खपत करती हैं जबकि इतने ही समय में ए.सी. का इस्तेमाल करने पर लगभग 15 यूनिट बिजली खपत हो जाएगी
- ए.सी. का उपयोग बरसात के महीनों में करना ही श्रेयष्कर

रहता है जब वायु में नमी की मात्रा 65 तथा तापमान 25°C या इससे अधिक हो।

- ए.सी. के कन्ट्रोल पैनल पर 25°C तापमान सेट रखना चाहिए।
- ए.सी. के ठीक सामने कदापि बैठना या लेटना नहीं चाहिए इससे आपके शरीर के सैल (cells) प्रभावित होते हैं।
- ए.सी. के सामने की ग्रिल बाहर निकालकर झाड़ पोंछकर पुनः लगाने से हवा का प्रवाह सही बना रहता है।
- यथा सम्भव ए.सी. के ऊपर छाया का प्रबंध सुनिश्चित करने से बिजली की खपत में कमी आती है।
- (10 X 10 X 10) फुट के कमरे के लिए 1 टन क्षमता का ए.सी. पर्याप्त रहता है।
- ए.सी. को खरीदते समय तीन या इससे अधिक स्टार रेटिंग को ही प्राथमिकता देना चाहिए।
- सर्दियों के मौसम में ए.सी. का हीटिंग मोड उपयोग करके ऊर्जा संरक्षण कर सकते हैं। रूम हीटर या कन्वेक्टर का प्रयोग यथा संभव कम करना चाहिए।
- जैसे हम स्वयं को तंदरूस्त रखने के लिए उपवास रखते हैं उसी प्रकार सप्ताह में एक दिन बिना ए.सी. के रहने की आदत डाल कर ऊर्जा संरक्षण में योगदान किया जा सकता है।
- समय–समय पर अपने ए.सी. की विद्युत खपत (करंट) की जाँच करवाते रहना चाहिए। ए.सी. के साथ में आई सर्विस बुक में ए.सी. द्वारा लिए जाने वाले करंट का मान दिया रहता है। एक टन का ए.सी. 6–7 एम्पियर तक करंट लेता है।

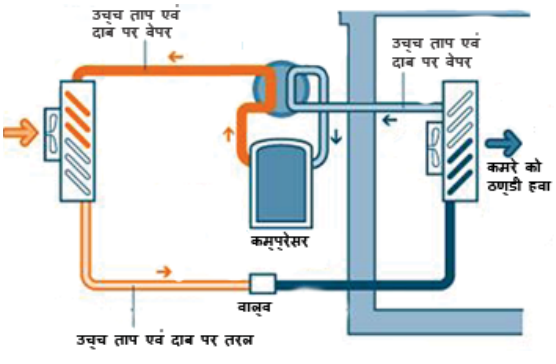

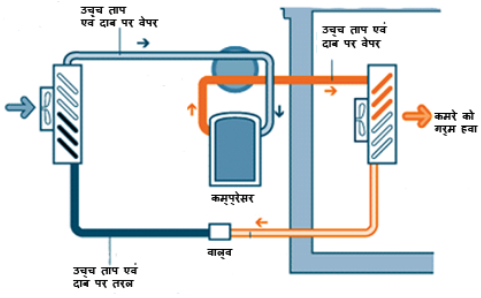

ऊर्जा बचाएं–भवष्यि बचाएं

चन्द्र शेखर गोस्वामी

विनय कुमार तिवारी

समीर खाण्डेकर

पर्यावरण की सुरक्षा करें और खुश रहें।

नीतू

स्त्री-अधिकार : एक चुभता दर्द

व्यक्ति के जीवन में कभी-कभी कुछ ऐसा घट जाता है कि लगता है चारो तरफ सन्नाटा पसर गया है, जीवन शून्य सा हो गया है और वह ठकराया हुआ दर्द के दलदल में धँसता जा रहा है। फिर! गोधूलि की बेला आती है व्यक्ति खुद से ही सवाल-जबाब करने लगता है, धीरे-धीरे यथार्थ के धरातल पर उसका पाँव टिकने लगता है, उसे यकीन करना पड़ता है कि "हानि, लाभ, जीवन, मरण, यश, अपयश, विधि हाथ"। शायद इन्हीं भाव, कुभाव, अभाव, समभाव, सुख, दुःख और ईर्ष्या-द्वेष आदि भावनाओं के बीच हिचकोले खाते हुये पुनः जीवन जीने की डगर पर चल पड़ता है इस विश्वास के साथ कि-

"कभी किसी को मुकम्मल जहां नहीं मिलता।
कभी जमीं तो कभी आसमां नहीं मिलता॥"

और ! कभी कभी लगता है कि पूरा आसमान मुट्ठी में समा गया है, विशेष करके उसके जीवन में जिसने लगातार कई वर्षों तक अकल्पनीय पीड़ा का दंश झेला हो, ऐसा ही कुछ मेरे जीवन में हाल ही में घटित हुआ जब हमारे परिवार में एक नन्ही सी परी 'नम्या' का प्रादुर्भाव हुआ।

7 मई, 2016 , शाम का वक्त जैसे ठहर सा गया था, मेरे अलावा परिवार के सभी लोग operation theater के बाहर चुपचाप अपने आप से बात करते हुये एक अनजानी खुशी का इंतजार कर रहे थे कि दरवाजा खुला और अस्पताल की नर्स सफेद तौलिया में लिपटी हुई सद्यः प्रसूत, रूई के फाहे सी, झक गौरवर्णी बच्ची की झलक दिखलाते हुये बोली "मुबारक हो परी का आगमन हुआ है, जल्दी से फोटो खींच लीजिये" एक साथ कई मोबाइल चमके और धन्य हो whatsapp का कि बच्ची ने अभी ठीक से माँ की गोद का भी संस्पर्श नहीं किया था कि चारों तरफ से, कुछ औपचारिक तो कुछ अनौपचारिक, बधाई संदेश आने लगे। पूरा परिवार मिश्रित भावनाओं के साथ कभी आनंद की सिहरन से पुलकित हो रहा था तो कभी विगत की घटनाओं को याद करके मन ही मन रो भी रहा था और अश्रुपूरित नेत्रों से आसमान की तरफ देखते हुये उस परी के लंबे और स्वस्थ जीवन की अभिलाषा लिए भाग्यविधाता से उसके जीवन-रक्षा की याचना भी कर रहा था।

मैं जिस मनः स्थिति की बात आपसे कर रहा हूँ कमोवेश इसी तरह की मनः स्थिति समाज में चारों तरफ दिखाई और सुनाई पड़ती है। हम लोग आखिर रिश्तों के धागे से जो बंधे हुये हैं और फिर बचपन से ही पढ़ते-पढ़ाते आ रहे हैं कि स्त्री-पुरुष के मिलन से ही परिवार नामक रथ का निर्माण होता है। दोनों के सम्यक भाव और एक दूसरे के प्रति समर्पण ही जीवन की सफलता को गढ़ते हैं। एक बहुत पुराना श्लोक है:

"यत्र नार्यस्तुपूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः"

अर्थात् जहां नारी की पूजा होती है वहाँ देवता विचरण करते हैं। जाहिर है यहाँ देवता-विचरण का तात्पर्य देवत्व गुण की व्यापकता से है। मतलब साफ है कि जिस परिवार में स्त्रियों का यथोचित मान-सम्मान होता है, उनकी मर्यादा की रक्षा होती है वहाँ सुख और शांति का वास होता है और जहां ऐसा नहीं होता आप सहज कल्पना कर सकते हैं वहाँ क्या स्थिति होती होगी?

मेरा सवाल भी यही है कि क्या सचमुच ऐसा है? और ! अगर नहीं है तो क्यों नहीं है?

मैं समझता हूँ कि हम सभी का जीवन कुछ इसी प्रकार की ज्ञानात्मक संवेदना और संवेदनात्मक ज्ञान के बीच हिचकोले खाता हुआ व्यतीत होता है जिससे मैं भी अलग नहीं हूँ। यही कारण है कि जब से संस्थान की पत्रिका "अंतस" के संपादक मण्डल ने यह निश्चय किया कि पत्रिका का दसवां अंक "महिला सशक्तिकरण" को समर्पित होगा तभी से मेरे मन में नाना प्रकार के भाव-कुभाव कुलबुलाने लगे थे कि तभी "नम्या" के प्राकट्य ने उस अकुलाहट को एक नई धार दे दी। बार बार प्रश्न कुरेद रहा था कि आखिर क्यों समाज के इतने पढे-लिखे प्रबुद्ध वर्ग को अपनी गृह-पत्रिका के विशेष अंक को "महिला सशक्तिकरण" को समर्पित करना पड़ा और 69 वर्ष की आजादी के बाद भी आखिर कब तक हमारे देश का यह पितृसत्तात्मक समाज देश की आधी आबादी को उसके अधिकारों से वंचित रखेगा। क्या यह हम सभी के लिए यह चिंतनीय, शोचनीय और विचारणीय नहीं है? चुनांचे यह एक बहुत ही गंभीर विषय है और इस पर उसी गंभीरता से बहस-मुबाहिसे की दरकार है।

मैं नहीं चाहता कि यह आलेख किसी भी तरह से बोझिल बने इसलिए थोड़ा विषय-परिवर्तन करके मैं आगे बढ़ना चाहूँगा। अमूमन तो सभी लोग हमारी इस बात से सहमत होंगे कि हमारे देश की सभ्यता, संस्कृति और समाज विश्व के अधिकतर देशों से इतर अलग धरातल

पर स्थापित है, गंगा-जमुनी तहजीब भारतीय समरसता की पहचान है।

मसलन हम बहु आयामी, बहु धर्मी और बहु भाषी हैं लेकिन इसके बावजूद भारत की एकता, अखंडता को अक्षुण्ण रखने के लिए कृतसंकल्प हैं। साथ ही हम कल्पनाशील भी हैं और बड़े से बड़े दु:ख-दर्द के सागर को भी कल्पना के बेड़े पर सवार होकर आपसी सहकार की पतवार चलाते हुये पार उतर जाते हैं। कहना न होगा कि कल्पना तत्व, सामाजिक सहयोग का ताना-बना और परम्परागत आध्यात्मिक दखल ने हमारे देश के साहित्य को बहुत समृद्ध किया है अस्तु, हम विचारित विषय को, आगे की यात्रा में, साहित्यिक कल्पना तत्व के माध्यम से समझने का प्रयास करेंगे।

हिन्दी साहित्य के दो महान कवियों, गोस्वामी तुलसीदास और श्री जयशंकर प्रसाद ने मानवीय चेतना की अनुभूतियों को इतनी सूक्ष्म शालीनता के साथ स्थापित किया है कि उनकी रचनाओं में हमारी पूरी सनातनी संस्कृति आलोकित हो उठी है। याद करें रामचरित मानस का वह प्रसंग जब पुष्पवाटिका में भ्रमण करते हुये श्रीराम को सीता जी के प्रथम दर्शन होते ही श्रीराम के सुंदर नेत्र स्थिर हो गए थे और पलकों ने सकुचाकर झपकना बंद कर दिया था :

भए बिलोचन चारु अचंचल। मनहुं सकुचि निमि तजे दिगंचल॥

और! वहीं सीता राम के प्रथम दर्शन होते ही उनको हृदय में धारण कर पलकों के किवाड़ बंद कर लेती हैं और ध्यानस्थ हो जाती हैं :

लोचन मग रामहि उर आनी। दीन्हे पलक कपाट सयानी॥

दरअसल पौराणिक विश्लेषण से इतर इन अर्धालियों को उद्धृत करने का हमारा निहितार्थ बस इतना है कि हम तत्कालीन सभ्यता का वह दिव्य रूप प्रस्तुत करना चाहते हैं जब स्त्री-पुरुष के आचार, विचार और व्यवहार में अभूतपूर्व समानता होती थी, रिश्तों में अनुकरणीय समर्पण का भाव होता था। यही नहीं आधुनिक कवि जयशंकर प्रसाद ने भी अपनी कालजयी रचना कामायनी में लिखा है:

नित्य-यौवन छवि से ही दीप्त, विश्व की करुण कामना मूर्ति।
स्पर्श के आकर्षण से पूर्ण, प्रकट करती ज्यों जड़ में स्फूर्ति।।

पुनश्च:

नारी! तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास-रजत-नग पगतल में।
पीयूष-स्रोत-सी बहा करो, जीवन के सुंदर समतल में।

क्या ऐसा प्रतीत नहीं होता कि इन पंक्तियों का आराधन करते समय निश्चित रूप से कवि के मन में तत्कालीन भारतीय संस्कार, संस्कृति और समाज का वह आदर्श रूप तरंगित हो रहा था जब पूरी कायनात नारी को केवल पुरुष के पूरक के रूप में ही नहीं देखती थी बल्कि पुरुष के जीवन में जितना भी कुछ रमणीय, स्पृहणीय, अनुकरणीय और प्रशंसनीय था, वह सब उसे स्त्री-सान्निध्य में ही विभिन्न रूपों में प्रेम-प्रसूत और प्रेरणा-प्रसूत ही प्राप्त होता था।

फिर आखिर समय के कुचक्र ने ऐसा क्या रच दिया कि आज की नारी की स्थिति को दर्शाते हुये उसी कवि को उसी महाकाव्य कामायनी में वह लिखना पड़ा जिसे माननीय दिल्ली उच्चन्यायालय तक ने निर्भया सामूहिक दुष्कर्म के मुकदमें में अपराधियों के मृत्यु-दण्ड को बरकरार रखते हुये बड़ी पीड़ा के एहसास के साथ उद्धृत किया :

यह आज समझ तो पाई हूँ, मैं दुर्बलता में नारी हूँ।
अवयव की सुंदर कोमलता, लेकर मैं सबसे हारी हूँ।

वस्तुत: सवाल यही है कि आज हम किसे आदर्श समाज का नाम देंगे। उसे कि जब नारी गर्व से कहती थी;

मैं उसी चपल की धात्री हूँ, गौरव महिमा हूँ सिखलाती।
ठोकर जो लगने वाली है, उसको धीरे से समझाती।

अथवा, उसे जिसे माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय ने उद्धृत किया था?

नि:सन्देह आज का समय शिक्षा और तकनीक के प्रचार-प्रसार से काफी समृद्ध हुआ है। सोचना यह है कि क्या हमारे मानवीय सरोकारों में भी अपेक्षित एवं गुणात्मक प्रगति हुई है या नहीं या कि आज का व्यक्ति सामाजिक प्रतिष्ठा के नाम पर केवल भौतिक प्रगति की अंधी दौड़ में कहीं खोता जा रहा है जिससे पूरे समाज में विकलता है, परिवार टूट रहे हैं, विशेष रूप से महिलाएं परिवार में और समाज में नाना प्रकार के उत्पीड़न का शिकार हो रही हैं। संभव है कि पाठक गण हमारे विचारों से सहमत न हों परंतु मैं एक प्रश्न अवश्य रखना चाहता हूँ कि क्या किसी भी समाज के लिए यह भयावह, भीषण, विकराल, डरावनी, घिनौनी, वीभत्स और घृणित स्थिति नहीं है जब एक देश का राष्ट्राध्यक्ष भी बिना किसी संकोच के कह देता है कि महिलाएं केवल बच्चे पैदा करने के लिए बनीं हैं और वे इससे इंकार नहीं कर सकती हैं अथवा जब एक स्वनामधन्य सनातन धर्मी टेलीविजन पर वार्ता के दौरान चिल्ला-चिल्ला कर कहता है "कि महीने के कुछ विशेष दिनों में महिलाएँ अपवित्र और त्याज्य होती हैं

और उनको पूजा करने और मंदिरों के गर्भ गृह में प्रवेश करने का अधिकार कदापि नहीं है, क्योंकि धार्मिक स्थलों पर तो उन दिनों में महिलाओं की उपस्थिति ही उस देवालय को अपवित्र बना देती है।"

ऐसे विचार और ऐसे कथन तब और भी ओछे हो जाते हैं जब बहुत सी तथाकथित धर्मभीरु महिलाएं भी बिना कोई तार्किक विश्लेषण और विरोध के इसको यथावत स्वीकार कर लेती हैं। और जनाब ! हद तो तब हो जाती है जब किसी पुरुष के मात्र तीन बार तलाक कह देने भर से ही भरे-पूरे परिवार वाली महिला का जीवन छितर-बितर हो जाता है। ये कुछ उदाहरण हैं जिससे पूरी नारी जाति सदियों से ग्रसी और छली जा रही है, कभी धर्म के नाम पर तो कभी किसी अलिखित, अतार्किक परंतु पीढ़ियों से चली आ रही कलुषित मान्यताओं के नाम पर । गजब की स्थिति है आपको शक्ति चाहिए तो देवी दुर्गा का आराधन करते हैं, ज्ञान चाहते हैं तो देवी सरस्वती की उपासना करते हैं और यदि वैभव और समृद्धि चाहिए तो देवी लक्ष्मी की चरण-वंदना करते हैं परंतु इन्हीं देवियों की वंश-बेल को जब चाहते हैं काट कर फेंक देते हैं, कुतर देते हैं, या उनको चौराहे पर खड़े उस पेड़ की तरह बना देते हैं जिसके नीचे बैठ कर थकान तो सभी उतारना चाहते हैं परंतु उसे खाद-पानी कहाँ से मिलेगा इसकी चिंता करने के लिए कोई तैयार नहीं होता। ये किस लोक की न्याय-व्यवस्था है मुझे तो आज तक समझ में नहीं आया।

मुझे यह भी कहना है कि यद्यपि आज की नारी शिक्षित होने के साथ-साथ अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हुई है, पीढ़ियों से व्याप्त कुरीतियों को ध्वस्त करती हुई नए प्रतिमानों को गढ़ रही है और जीवन के समस्त दर्शन में पुरुष से बेहतर प्रदर्शन कर रही है यहाँ तक कि कई नामी गिरामी संस्थानों के शीर्ष पद पर स्थापित होकर अपने कर्तव्यों का बेहतर निष्पादन कर रही है तथापि, प्रश्न वहीं खड़ा है कि क्यों इतना सब कुछ होने के बावजूद आज भी बहुतायत की संख्या में महिलाएं अमर्यादित जीवन-यापन करने को अभिशप्त हैं। यहाँ तक कि विश्व के अधिकांश विकसित देशों में भी महिलाओं को दोयम दर्जे का नागरिक होने का आभास करवाया जाता रहता है।

मेरे विचार से आज की नारी सर्व गुण सम्पन्न है यदि वह कहीं से विपन्न है तो केवल और केवल शारीरिक बल से, जो कि प्रकृति-प्रदत्त है। दरअसल कोमलांगी होना उसकी नैसर्गिक भव्यता और दमकते आकर्षण का अपरिहार्य गुण है, परंतु चिंतनीय यह है कि इस एक दुर्बलता का इतना बड़ा दुष्परिणाम कि हर स्तर पर उसे लज्जित होने का दंश झेलना पड़े?

यह किसी भी परिवार और किसी भी समाज में किसी भी तरह से स्वीकार्य नहीं होना चाहिए।

यद्यपि महिला सशक्तिकरण की दिशा में बहुत से कारगर कदम उठाए जा चुके हैं और लगातार उठाए भी जा रहे हैं । संवैधानिक स्तर पर भी बहुत से अधिकार महिलाओं को प्राप्त हैं परंतु कार्यान्वयन स्तर पर अभी बहुत कुछ किया जाना शेष है। वस्तुतः आज की आवश्यकता है कि परिवार, समाज और सरकारों के सभी घटकों को एक साथ मिलकर बड़ी शिद्दत से, खुले मन से नारी-अस्मिता की कद्र करना होगा और उनके संवैधानिक अधिकारों को कठोरता से लागू करना होगा। मेरा व्यक्तिगत विचार है कि उपर्युक्त के साथ ही निम्नलिखित को भी सुनिश्चित करने की महती आवश्यकता है :

- हर परिवार को कम से कम एक कन्या के पालन-पोषण और शिक्षित करने का उत्तरदायित्व सौंपा जाये, भले ही उस परिवार को एक कन्या को गोद लेना पड़े।
- यद्यपि संवैधानिक रूप से पैतृक संपत्ति में भारतीय महिलाओं के बराबरी का अधिकार दिया गया है परन्तु व्यावहारिक स्तर पर अभी भी बहुतायत में स्त्रियों को इसकी जानकारी नहीं है इसलिए एक जागरूकता अभियान की आवश्यकता है। बेटियों को जानकारी होनी चाहिए कि-
  1. पैतृक सम्पत्ति में उन्हें भी उतना हिस्सा मिलेगा जितना उनके भाइयों को।
  2. वे परिवार में अपने हिस्से की मालिक के रूप में रह सकती हैं और अपना हिस्सा कभी भी बेंच सकती हैं।
- दहेज प्रथा के पूर्णरूप से खत्म करना होगा। दहेज की इच्छा करने वालों का पूर्ण सामाजिक बहिष्कार और कठोर कानूनी दण्ड ही इसका विकल्प है।
- हाईस्कूल स्तर तक के सभी विद्यालयों के सभी पद महिलाओं के पास हों और कक्षा-10 तक की शिक्षा-दीक्षा की सम्पूर्ण जिम्मेदारी केवल महिलाओं के पास हो। इससे न केवल महिलाओं के लिए रोजगार सृजन होगा बल्कि बच्चों में सम्यक संस्कार का विकास होगा।

श्रीमदभागवत गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं–ममैवांशो जीवलोकेजीवभूतः सनातनः– इस जीव लोक की सभी जीवात्मा में मेरा ही अंश है। अन्यत्र वे यह भी कहते हैं–चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः– मेरे द्वारा ही चारों वर्णों की रचना गुण व कर्मों के आधार पर की गयी है।

वस्तुतः जब ईश्वर ही समस्त प्राणियों में जाति, धर्म, लिंग और संप्रदाय के आधार पर विभेद नहीं करता तो फिर हमें कहाँ से यह अधिकार मिल जाता है कि हम महिलाओं की अस्मिता के साथ अमानवीय आचरण करें ? कहने की आवश्यकता नहीं है कि समाज में ऐसे अनेक उदाहरण मिल जाएँगे जहां लोगों को उच्च स्थान उनके जाति, लिंग और धर्म के नाम पर नहीं बल्कि उनको उनके कर्म और ज्ञान के बल पर मिला है और पौराणिक काल से ही महिलाओं ने इस तरह के कई प्रतिमान स्थापित किए हैं।

वस्तुतः यदि हम चाहते हैं कि हमारे देश की महिलाएं सशक्त हों और उनका सर्वांगीण विकास हो और उन्हें दुष्कर्म जैसे घृणित पापों का दंश न झेलना पड़े तो समाज के हर स्त्री-पुरुष, को कविवर दुष्यंत के शब्दों को याद करते हुये सदियों से चली आ रही इस सामंती दुर्व्यवस्था के खिलाफ एक जुट होकर ताल ठोंकनी होगी और महिलाओं के व्यापक हित को ध्यान में रखते हुये उसे बदलने कि कोशिश करनी होगी। क्योंकिः

हो गई है पीर पर्वत-सी पिघलनी चाहिए,
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए।
सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं,
सारी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए।

और! जब तक ये आदर्श स्थिति समाज में नहीं बनती तब तक हम सभी को मन, वचन और कर्म से प्रयास करते रहना होगा जाहिर है कि यदि किसी भी समाज में महिलाएं महफूज और मर्यादित नहीं हैं तो वह आदर्श समाज हो ही नहीं सकता। वह समाज न तो प्रेममय, आनंदमय, रसमय, सुखमय, सुखद और सुंदर जीवन की कल्पना कर सकेगा और न ही उन्मुक्त भाव से गुनगुना सकेगाः

नव नील कुंज हैं झूम रहे, कुसुमों की कथा न बंद हुई।
अंतरिक्ष है आमोद भरा, हिम-कणिका ही मकरंद हुई।

डॉ. वेदप्रकाश सिंह
उपकुलसचिव

मन के वे कुछ कोने

मन के वो कुछ कोने छुपे-छुपे रहते
अधखुली आँखें लिये रास्ते को तकते,
पर बाहर निकलने को, चलने को, बढ़ने को, डरते से रहते।

बारिश की बूंदों को देखते, मचलते
पर मन के ये कोने, अनछुए, अनचिन्हित कोनों में बसते।
कोनों में बसे कोने बारिश को देखते,
बरखा की कुछ बूँदें, चंचल हो उठतीं,
छूने को कोनों को, कोने भिगोने को हवा में उचलतीं

पर कोने बच जाते, सूखे ही रह जाते,
खुद ही वो तत्पर हैं, सूखे अस्तित्व को
कोई कहीं छू न ले, कोई कहीं जान न ले
मन के वो कुछ कोने हैं बस मेरे अपने ।

चुपचाप मन के प्रांगण में पड़े रहने में
और छिपे-छिपे रहने में इनका अस्तित्व।
कोनों में आँखें हैं, देखती समझती हैं,
रास्ते की रेत से बचती हैं, मिचती हैं,
उड़ती हुई रेत कहीं आँखों में न पड़े।
रेत की आँधी से, बारिश के पानी से
झंझा से, बिजली से, डरे-डरे रहते हैं,
कोने अब कोनों में सिमटे ही रहते हैं।
अभिव्यक्ति से क्या होगा
कौन इसे समझेगा, कौन इतना तत्पर है
कौन है वहाँ
शायद बस सन्नाटा।
यह भी तो हुआ था,
कोने थे निकले आसमान छूने को, बारिश में भीगने को
पर नम वो हो न सके,
तपती सी तड़पन पर बूँदे भी सूख गईं।
कोनों में रहना ही अब सब से अच्छा है।
यही सबसे सच्चा है।

अभिव्यक्ति रहने दो, चुप्पी को मत तोड़ो
मन के उन कोनो को खाली ही रहने दो,
मन के उन कोनो को कोने में रहने दो,
यह भी कहीं खो न जाएँ,
ये ही तो बस अपने हैं।

प्रोफेसर शिखा दीक्षित

मैं एक दिन सुबह जल्दी उठी

सूर्य की लालिमा, मेरी खिड़की पर आ रही थी।
वो मेरे लिए नये दिन का संदेशा ला रही थी।
कुछ नया, कुछ अच्छा-
जो कभी न किया था ऐसा कुछ करने को उकसा रही थी।

पर अचानक, मेरी नजर एक शख्स पर पड़ी
जो अपनी लाजार, बेबस बीबी को पीट रहा था।
नशे में धुत्त उसे घसीट रहा था।

बेचारी औरत चाहकर भी कुछ न कर पा रही थी।
अपने औरत होने की सजा पा रही थी।
यकीन न हो रहा था कुदरत के इन्साफ पर –
जो है दुर्गा, जो है चण्डी, वो ही ये सब सहे जा रही थी।

इंसानों ने कैसा यह इंसाफ किया?
जो चलाती है दुनिया, उसे खुद से ही जुदा किया।
उसका अस्तित्व, उसकी पहचान छीनकर उसे दूसरों पर आश्रित बना दिया ।
जिसमें दुनिया जीतने का है दम, उसे टुकड़ो-टुकडों का मौहताज़ किया।

हमें जरूरत है खुद को पहचानने की,
स्वयं न झुकने की, बल्कि दूसरों को झुकाने की,
अपनी प्रतिभा, अपना शौर्य सबके सामने लाने की,
औरत है दुर्गा, औरत है चण्डी, ये बात सबको समझाने की ।

वो सुबह मेरे जीवन को कुछ खास सिखा गयी थी,
सिर्फ खुद को नहीं, दुनिया को सुधारने का तरीका बतला गयी थी।
चुप रहकर शांत रहकर, कुछ न मिलने वाला है।
कुचल के आगे बढ़ो उसको, जो आपको दबाने वाला है।

काजोल
कक्षा - 12

अपने डॉक्टर पर विश्वास करें

आज की परिस्थितियों को देख कर कभी-कभी मन में सोचता हूँ कि आई आई टी को क्या हो गया है। लोगों के चेहरों पर तनाव है, खुशी गायब है, बीमारी का भय इतना ज्यादा मैंने मरीजों के चेहरों पर पहले कभी अनुभव नहीं किया था जितना आज देख रहा हूँ। यह सब एक अजीब तरह का माहौल पैदा कर देता है जिसका नतीजा है कि हम डॉक्टरों को मर्ज से ज्यादा मरीज को समझना पड़ता है। हम उनका पॉजिटिव चेहरा नहीं देख पाते। लगभग दस साल की प्रैक्टिस के दौरान मैंने ऐसे कई अनुभव पाए हैं जहां मरीजों ने अधिकतर मुझ पर विश्वास किया, हाँ कभी-कभी अविश्वास भी। लेकिन मेरी सकारात्मक ऊर्जा ने उन्हें मुझसे हमेशा जोड़े रखा। ऐसे अनुभव हर डॉक्टर के पास होते हैं पर लोग इसे नजरअंदाज कर केवल उसके व्यावसायिक चेहरे का महिमा मंडन करते हैं। मेरे अनुभव किसी के काम आएं इस उद्देश्य से मैंने यह लेख लिखा है। मैं सोचता हूँ कि अपने काम से जो सबक मैंने लिए उन्हें औरों तक भी पहुंचा सकूँ। ताकि सकारात्मक ऊर्जा से भरा यह सफर निरंतर जारी रहे।

मेरा यह लेख किसी एक अनुभव पर आधारित नहीं है। इसे मैंने अपने अनेकों अनुभवों को जोड़कर लिखा है। जहां तक मैं समझता हूं हर मरीज हमें एक सबक देकर जाता है। बदले में वह हमसे केवल विश्वास लेकर जाता है। एक डॉक्टर होने के नाते मैं खुद पर गर्व महसूस करता हूँ। क्योंकि दुनियां में ऐसे बहुत से लोग हैं जो दूसरे के विश्वास के लिए तरस रहे हैं और एक डॉक्टर ही है जिस पर हर कोई आंख बंद करके भरोसा कर लेता है। अधिकांश रोगियों के लिए डॉक्टर आज भी भगवान का रूप होता है।

उदाहरण के तौर पर, मरीजों को देखते-देखते पता चला कि उच्च रक्त चाप के ज्यादातर मरीज अपने जीवन से खिलवाड़ करते हैं। यों अविश्वास और लापरवाही के बहुत से उदाहरण है, लेकिन यहाँ ब्लड प्रैशर का उदाहरण ही उचित रहेगा। सभी रोगी जानते हैं कि उच्च रक्त चाप (हाइपरटेंशन) से हार्ट अटैक या Brain hemorrhage (दिमाग की नसों का फटना और फालिज) जैसी तकलीफ हो सकती है फिर भी इस बीमारी के मरीज बिल्ली देख कर भी आँखें बंद करने के प्रयत्न करते हैं जैसे–

1. नियमित रूप से रक्तचाप की जाँच के बिना किसी भी सिस्टम– (एलोपैथी, आयुर्वेद एवं होम्योपैथी आदि) की – दवाइयां स्वयं तय करके खाना; कभी भी दवाई रोकना या स्वत: अपनी इच्छानुसार फिर शुरू कर देना, यह दलील देना कि हमें पता चल जाता है कि आज रक्त चाप बढ़ा हुआ है;

2. किसी डाक्टर, वैद्य या होम्योपैथ से दवाई लिखवा कर बिना चेक कराए दवाई लेते रहना।

3. यदि कभी बी पी चेक भी कराते हैं तो बढ़ने पर दलील देना कि यह अमुक कारण से बढ़ गया है, इत्यादि-इत्यादि और औषधि न लेना।

4. बड़ी हैरानी होती है कि बहुत से सम्पन्न तथा ऊँचे औह्दे पर बैठे लोग भी अपने पर प्रयोग करते हैं, जैसे अमुक चीज खाने से या (व्यायाम) से बिना दवाई खाए उच्च रक्त चाप ठीक हो जाएगा। सब प्रयोग अपने पर करते हैं। एक जानकार की हालत खराब हो गई उसे चक्कर–पर चक्कर आ रहे थे पूछने पर पता चला डाक्टर ने कहा था नमक थोडा कम कर दो उसने नमक खाना ही छोड़ दिया। न नमक खाऊंगा न ब्लडप्रेशर होगा ? इसके परिणाम स्वरूप उसे निम्न रक्त दवाब हो गया। निष्कर्ष यह है कि बिना नियमित चेक कराए यह विश्वास न करें कि मेरा ब्लडप्रेशर कंट्रोल में है, या घट रहा है या बढ़ रहा है। हो सके तो एक पाकेट डायरी पास रखें, कम से कम हर माह या तीन माह में एक बार बी पी का ब्यौरा लिख कर रखें। यदि रक्तचाप नापने का Instrument घर में है तब भी कभी-कभी किसी डिग्री धारी डाक्टर के पास जा कर उससे भी चेक कराते रहें, पता चल जाएगा आपका रक्त चाप ठीक है या नहीं। ज्यादातर लोग दवाइयों को लेने से गुरेज करते है। उनको मेरी सलाह है जीवन का दो तिहाई या तीन चौथाई जीवन तो बिना दवा के कट गया शेष दवा के सहारे सुरक्षित गुजार लें। मैं जानता हूँ कि कई कीमती जानें दुनिया से चली गई या उनके जीवन का काफी बड़ा हिस्सा बिस्तर पर गुजरा, जबकि यदि वह जरा सा दवाई ले लेते तो आज जिन्दा होते, देश के लिए कई महत्वपूर्ण काम कर रहे होते, उनको डाक्टर नहीं समझा पाए परन्तु प्राकृतिक चिकित्सकों की बात ने ज्यादा अपील किया। जिस प्रकार रबड़ का साधारण पाईप पुराना हो कर अपना लचीलापन खो देता हैं हमारी धमनियों पर भी आयु का असर पड़ता है। ब्लड प्रेशर के निदान के लिए कुछ भी करें परन्तु विश्वास तभी करें जब नियमित जाँच की जाये और वैज्ञानिक परीक्षण के माध्यम से आप यह जान सकें कि सच में आपका ब्लडप्रेशर कंट्रोल में है। समय समय पर बी पी की दवाई भी कम अधिक की जाती है, बदली जाती है इसलिए

एक बार लिखी दवा को परमानेंट राशन कार्ड न समझे।

कई बार बार मरीज जब डॉक्टर के पास आता है तो कहता है मुझे इस दवा से आराम है। ऐसे मरीजों से मेरा निवेदन है कि वे दवा का निर्णय कृपया डॉक्टर पर छोड़ें।

आज सामान्यत: मरीज इंटरनेट सर्च के आधार पर डॉक्टर के खिलाफ ''दोषारोपण'' या बहुत अधिक सवाल जवाब करते हैं। डॉक्टरों पर संदेह की उंगलियां उठ रही हैं। मैं ये भी देखता हूँ इन्हीं में से कुछ लोग झोला छाप डॉक्टर से इलाज करा रहे होते है। अनुभव की बात ये है कि ऐसे ही लोगों को सबसे ज्यादा शिकायत होती है। व्यवहार में कई बार का अनुभव है कि मरीज इंटरनेट से दवा देख कर आता है और आप को कहता है मुझे ये दवा लिख दीजियेगा। मैं इस तरह के मरीजों को हमेशा ही निराश करता हूँ। कई बार वो बोल देते है कि मेरे एक संबंधी एक बड़े अस्पताल में डॉक्टर हैं, उन्होंने ये बताया है, लेकिन यदि उनसे बात कराने के लिए बोलो तो जबाब नहीं होता है या इधर-उधर देखने लगते हैं। ऐसे लोग एक प्रकार से अपने स्वास्थ्य से ही खेलते है। ये बात समझाने के लिए काफी है कि जब आप इंटरनेट पर किसी बीमारी को देखते है तो साधारण फोड़े और दर्द को प्राय: कैंसर ही मान बैठते हैं या फिर कैंसर को एक साधारण गांठ मान कर लंबे समय के लिए टालते रहते हैं और आपका रोग असाध्य बन जाता है। एक भ्रमित मरीज को समझना, समझाना और उसके साथ संवेदना रखना कठिन काम है। भयभीत मरीज के साथ संवेदना तो होती है पर भ्रमित और भयभीत में अंतर करना होता है।

चिकित्सकीय गलतियों के अतिरिक्त अक्सर ''व्यवस्थागत खामियां'' भी होती हैं, केवल एक डॉक्टर की लापरवाही सदैव गलत निदान का कारण नहीं होती। डॉक्टर की पूरी कोशिश रहती है कि बेहतरीन इलाज हेतु बीमारी के वैज्ञानिक आधार, बीमारी का इतिहास, लक्षण और टेस्ट के नतीजों को अच्छे से खंगालकर उसके जरिए सटीक अंदाज लगाकर उपचार किया जाये। जो डॉक्टर व्यावसायिक नैतिकता का अच्छा उदाहरण नहीं होगा वह भी चाहेगा कि उसके मरीजों को उससे फायदा हो और उसका नाम चले।

मैं मानता हूँ कि दवा का निर्धारण एकदम सटीक विज्ञान नहीं है। रसायन विज्ञान और जीव विज्ञान माना कि विज्ञान हैं किन्तु चिकित्सा उस तरह का विज्ञान नहीं है। निदान और औषधियों को लेकर जवाब हमेशा ''हां'' या ''नहीं'' में रहता है। सांख्यकी की भाषा में टाइप-वन या टाइप-टू की गलतियों की संभावना हमेशा बनी रहती है।

दवा देने की कला इस बात पर निर्भर है कि कोई चिकित्सक किस तरह वैज्ञानिक नतीजों को डॉक्टरों के संगठनों के बनाए गए दिशा-निर्देशों के आईने में देखकर इलाज की प्रक्रिया शुरू करता है। इस कार्य में डॉक्टर के अपने अनुभवों का भी एक विशेष महत्व है। यदि डॉक्टर और पेशेंट में विश्वास के साथ अनुभवों और विचारों का सही आदान-प्रदान हो तो निर्णय की त्रुटियों को समय रहते और आसानी से दूर किया जा सकता है।

किन्तु सवाल हमेशा जीवन-मरण का नहीं होता। अधिकांश स्थितियों में डॉक्टर पर विश्वास करने से रोगी को लाभ ही होता है। लेकिन स्वयं द्वारा इलाज निर्धारित करने का तरीका और डॉक्टर को अपने वैयक्तिक चिंतन के अनुसार दवा लिखने के लिए बाध्य करना, डॉक्टर और मरीज के बीच एक तरह का अविश्वास पैदा कर देता है, जिससे बेवजह खर्च बढ़ता है और बीमारी को ठीक करने में अधिक समय लगता है, या अनेकों बार बीमारी लाइलाज हो जाती है। मिसाल के तौर पर, एक मध्य आयु के दंपती डॉक्टर के पास पहुंचे, आदमी की शिकायत थी कि खाने के बाद उसके सीने में जलन शुरू हो जाती है और कुछ देर में गले तक पहुंच जाती है। जवाब में डॉक्टर ने कहा कि वे बदहजमी के शिकार हैं और खाने में कुछ परहेज की सलाह के साथ कुछ दवाइयां लें। लेकिन मरीज और उसकी पत्नी सवाल पर सवाल पूछते चले गए। इन परिस्थितियों में आप डॉक्टर से क्या अपेक्षा रखते हैं? हालांकि डॉक्टर को अपने इलाज पर पूरा यकीन था फिर भी उसने कई तरह के टेस्ट लिख दिए। उसने दिल के दौरे की संभावना को दूर करने के लिए ईसीजी और ट्रेडमिल टेस्ट (टीएमटी) करवाने के साथ होमोसिसटीन और लिपोप्रोटीन टेस्ट भी करवाए। इन सभी टेस्ट में मरीज के 15,000 रु. लगे। हालांकि ये टेस्ट गैर-जरूरी थे लेकिन इनसे डॉक्टर को आगे के कानूनी झंझटों से बचाव का रास्ता मिल

गया। इसका सबसे प्रतिकूल असर मरीज और डॉक्टर के रिश्तों में देखने को मिल रहा है। लेकिन ऐसा क्यों हुआ? क्योंकि मरीज को डॉक्टर पर विश्वास नहीं था।

वर्तमान युग में अनेकों प्रकार की उपचार पद्धतियाँ प्रचलित हैं। उनमें सभी पद्धतियाँ सभी प्रकार के रोगों के निदान का दावा करती हैं किन्तु कोई भी पद्धति प्रत्येक रोगी को पूर्णरूपेण ठीक करने का दावा नहीं कर सकती। यह बात भी सत्य है कि बहुत से चिकिसकों ने चिकित्सा का व्यवसायीकरण कर रखा है। बहुत से अयोग्य विद्यार्थी धन के बल पर चिकित्सा संस्थानों में प्रवेश ले रहे हैं और चिकित्सा के नैतिक व्यवसाय को धन कमाने के लिए प्रयोग कर रहे है किन्तु सभी ऐसे नहीं हैं। थोड़ा जांच-परख कर चिकित्सक को चुनें किन्तु फिर उसके कहे अनुसार आचरण भी करें। जीवन शैली का, व्यायाम का, ऋतु का, खाने-पीने का, सभी बातों का स्वास्थ्य पर असर पड़ता है, इसमें कोई संदेह नहीं। किन्तु ये सारी बातें चिकित्सक को भी पता होती हैं। यदि आपसे बात करके वह कोई दवा निर्धारित करता है तो उसे चिकित्सक के बताए हुए तरीके के अनुसार जरूर लें और चिकित्सक से अपने अनुभव साझा करें। हॉस्पिटल से दवा लेकर झाड-फूँक पर चले जाने, या दवा न लेने या चिकित्सक को जबरदस्ती टेस्ट लिखने के लिए दबाब डालने से आप अपनी और व्यवस्था दोनों की हानि करते हैं। सभी के हित में आवश्यक है कि डॉक्टर पर विश्वास रखें। और अंत में मैं यह भी सलाह दूंगा कि आप अन्य लोगों से संवाद स्थापित करें। आज की सबसे बड़ी समस्या यही है कि मनुष्य अकेलेपन का शिकार है। वह किसी से बात नहीं करता। इस कारण वह अनेक प्रकार के भ्रम पाल लेता है जिनमें असाध्य रोगों से ग्रसित होने का भ्रम भी सम्मिलित है। दोस्त बनाइये, अपनी समस्याएँ दूसरों से बाँटिए, बहुत संभव है कि लोग आपको सही राय दें। लोगों के साथ संवाद करने, सुख-दुख बांटने से मन और हृदय को अत्यंत लाभ होता है ऐसा आधुनिक मनोविज्ञान भी कहता है। साथ में आप भ्रम, अविश्वास और कुंठा में जाने से भी बचे रहते हैं। कम से कम एक दो तो ऐसे मित्र रखिए जिनसे आप खुल कर अपनी हर तरह की बात कर सकें।

डॉ. संदीप मिश्रा

जेरे पायत गर बिदानी हाले मोर।
हम चो हाले तस्त जेरे पाये पील।।

भावार्थ-तुम्हारे पैर के नीचे दबी चींटी का वही हाल होता है जो हाथी के पाँव के नीचे दबने से तुम्हारा होगा। दूसरे के दुख को अपने दुख से तुलना किए बिना हम उसके दुख की अवस्था का अनुमान नहीं लगा सकते।

सबको अपने समान समझ

किसी बादशाह को एक भयंकर रोग था। कई हकीम मिलकर इस राय पर पहुंचे कि एक खास तरह के आदमी के पित्त के सिवाय इस बीमारी का कोई अन्य इलाज नहीं है। बादशाह ने हकीमों को इस तरह के आदमी की तलाश करना हुक्म दिया। उन लोगों ने एक किसान के लड़के में वह सब गुण मौजूद पाए। बादशाह ने उस लड़के के मां-बाप को बुलाया और उन्हें बहुत सा धन देकर राजी कर लिया। काजी ने फैसला सुनाया कि बादशाह की सलामती के लिए रिआया का खून न्यायसंगत है। जब जल्लाद उसे मारने के लिए आगे बढ़ा, तब वह लड़का आकाश की ओर देखकर हंसा। बादशाह ने उससे पूछा -इस स्थिति में ऐसी क्या बात है जो तू हंस रहा है?

लड़के ने कहा-बालक माँ-बाप के प्रेम पर निर्भर रहते हैं, मुकदमों का समावेश काजी करता है और न्याय की आशा बादशाह से की जाती है। मेरे माता-पिता की मति थोड़ा सा धन पाकर ही भ्रष्ट हो गई है कि वे मेरा खून बहाने पर राजी हो गए। काजी ने मानवता को ताक पर रखकर मेरी कुर्बानी को जायज ठहरा दिया। बादशाह अपनी स्वास्थ्य रक्षा के लिए मेरी मृत्यु पर राजी हो गया। ऐसी दशा में मैं ईश्वर के सिवाय किसकी शरण में जाऊँ-यही सोचकर मुझे हंसी आई।

लड़के की बात सुनकर बादशाह बहुत दुखी हुआ। वह आँखों में आँसू भरकर बोला-"निर्दोष का खून बहाने से तो मेरा मर जाना अच्छा है।"

बादशाह ने उस लड़के का सिर और आँखे चूमकर गले से लगाया और उसको बहुत सा इनाम देकर छोड़ दिया। लोग कहते हैं कि इस घटना के कुछ दिनों बाद बादशाह रोगमुक्त हो गया।

शिक्षा-इस कहानी से हमें यह शिक्षा मिलती है कि हमें सब प्राणियों को अपने समान समझना चाहिए। दूसरों को कष्ट पहुँचाते समय इस बात ख्याल रखना चाहिए कि यदि कोई हमें भी ऐसा ही कष्ट दे तो कैसा दुख होगा। अपने भले के लिए कभी भी दूसरे का बुरा नहीं करना चाहिए।

स-आभार संग्रह-स्रोत-शेख़ सादी की विश्व प्रसिद्ध प्रेरक सूफी कथाएं

नुक्कड़ नाटक

नुक्कड़ नाटक, नाटक के क्षेत्र में अपेक्षाकृत एक नया प्रयोग है। आरंभ में साहित्य और नाटक विद्वानों ने इसे नाट्यविधा ही मानने से इंकार कर दिया था, लेकिन आठवें दशक से यह नाट्य रूप काफी लोकप्रिय हुआ है और इससे कई प्रख्यात नाटककार और रंगकर्मी जुड़े हैं साथ ही इसने रंगमंचीय नाटकों को प्रभावित भी किया है। नुक्कड़ नाटक को अंग्रेजी में स्ट्रीट प्ले (Street Play) के नाम से जाना जाता है। यह ऐसी नाट्य विधा है जिसे किसी सड़क पर, गली, चौराहे पर, किसी फैक्ट्री के गेट पर खेला जा सकता है। आम तौर पर इसको उसी रूप में पेश किया जाता है जैसे सड़क पर मदारी अपना खेल दिखाने के लिए मजमा लगाते हैं। नाट्य प्रस्तुति का यह रूप जनता से सीधे संवाद स्थापित करने में मदद करता है। नुक्कड़ नाटक में न तो अंक परिवर्तन है और न दृश्य परिवर्तन। कथानक में परिवर्तन को ऐसे रंग संकेतों के माध्यम से पेश किया जाता है जिसे दर्शक आसानी से ग्रहण कर सकें। वेशभूषा भी बार-बार नहीं बदली जा सकती और न ही नाटक को इतना लंबा किया जा सकता है कि सड़क पर खड़े और बैठे दर्शकों के लिए धैर्य रखना मुश्किल हो जाए। इसीलिए नुक्कड़ नाटक बहुत लंबे नहीं होते।

अपने लेख नुक्कड़ नाटक का महत्व और कार्यप्रणाली में सफदर हाशमी ने इस तथ्य की पुष्टि की है, हमारा अनुभव यह है कि अलग-अलग क्षेत्रों में कार्यरत नाट्यमंडलियों को अंतत अपने नाटक खुद ही रचने पड़ते हैं। मंड़ली के सदस्य किसी भी विषय पर अच्छी तरह बहस करके, जनवादी संगठनों और आंदोलनों के नेतृत्व से विचार-विमर्श करके एक सुदृढ़ और गहरी समझ बनाने के बाद अपनी सामूहिक रचनाशक्ति से ही अच्छे-अच्छे नाटक तैयार कर सकते हैं। जन नाट्य मंच (जनम) के मशीन, हत्यारे, औरत, राजा का बाजा, पुलिस चरित्रम् और काला कानून जैसे नाटक इसी प्रक्रिया में रचे गए थे। रंगकर्मी मलयश्री हाशमी ने कहा है, सफदर का मानना था कि किसी भी नाट्यकृति के लिए स्क्रिप्ट और निर्देशन सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। जन नाट्य मंच के निर्माण और विस्तार में उनकी बहुत अधिक भूमिका थी। 1973 में जब जनम बना, तब कभी-कभार जरूरत पड़ने पर वह स्क्रिप्ट में कुछ रद्दोबदल करते थे। पर लिखना शुरू हुआ पांच साल बाद स्ट्रीट थियेटर शुरू होने पर। आर्थिक अभावों ने हमें यानी जनम को स्ट्रीट थियेटर की ओर मोड़ा तथा स्क्रिप्ट के अभाव ने सफदर को लिखने के लिए मजबूर किया और

इसी क्रम में जनम में लिखने की सामूहिक शैली और कला का विकास हुआ था।

आठवें दशक में एक ओर यदि जन नाटय मंच द्वारा प्रस्तुत किये जा रहे नुक्कड़ नाटकों को राष्ट्रीय स्तर पर जनसाधारण के बीच व्यापक स्वीकृति और ख्याति मिल रही थी तो दूसरी और स्थापित और परंपरावादी रंगकर्मियों, नाट्यसमीक्षकों और अभिजात कलामंडियों में नुक्कड़ नाटक को रंग कर्म मानने से इंकार करने वालों की भरमार थी। नाट्य लेखन और रंगकर्म से जुड़े अनेक लोग उसे राजनीतिक नारेबाजी और स्टंट कहकर इसकी खिल्ली उड़ा रहे थे। लंबे संघर्ष के बाद लोग उसे नाट्यकला की एक विधा और गंभीर रंगकर्म मानने के लिए विवश हुए हैं। दरअसल नुक्कड़ नाटक की तकनीक मंचीय नाटक से काफी भिन्न है। मंच नाटक के लिए पर्दा, साज-सज्जा, नेपथ्य, ध्वनि संयोजन, महंगा मंचसेट आदि के साथ बड़ी इमारत के अंदर का सभागार आवश्यक होता है। अगर मुक्त आकाश के नीचे मंच नाटक हो रहा है तो फिर शामियाना, कनात, माइक्रोफोन सिस्टम, विशेष प्रकार की प्रकाश व्यवस्था आदि आवश्यक होते हैं। इसके विपरीत खुली जगह में बिना किसी साज-सज्जा के बगैर ही नुक्कड़ नाटक खेले जाते हैं। मंच नाटक का दर्शक मंच से दूर ठीक सामने होता है। नुक्कड़ नाटक में दर्शकों और नाट्यमंडली के बीच कोई दूरी नहीं होती, बल्कि सारे अभिनेता दर्शक समुदाय के बीच गोलाकार रंगस्थल बनाकर अपना नाटक खेलते हैं। माइक्रोफोन तथा सभागार की ध्वनि व्यवस्था के कारण मंच-नाटक के कलाकारों के लिए जोर से बोलना या चीखना अनावश्यक नहीं होता है जबकि नुक्कड़ नाटक के लिए यह आवश्यक होता है। अधिकांश मंच नाटकों में एक तरह की भूमिका के लिए एक अलग अभिनेता होता है, जबकि नुक्कड़ नाटक में अनेक बार एक ही अभिनेता को टोप, छड़ी या वेशभूषा में थोड़ा परिवर्तन करके अनेक प्रकार के चरित्रों की भूमिका निभानी होती है। सफदर हाशमी की यह स्पष्ट समझ थी कि रंगकर्मी अपने चारों ओर के रंगीन पर्दों और तामझाम पर निर्भर नहीं होता। किसी भी खाली जगह पर चाहे वह गोल हो या चौकोर या वर्गाकार, नाटक अपनी पूरी ताकत और खूबसूरती के साथ प्रकट हो सकता है।

सभी नुक्कड़ नाट्यमंडलियों को सफदर तथा अन्य जनवादी कलाकारों ने यह शिक्षा दी कि सार्वजनिक पार्क, बाजार, बस स्टॉप, गली-मोहल्ले और औद्योगिक इलाके ऐसे क्षेत्र हैं जिन्हें रंगशाला में

आसानी से बदला जा सकता है। शहरों और कस्बों से आने वाले दर्शकों के बीच खेले जाने वाले नुक्कड़ नाटकों की रंग प्रस्तुति, तकनीक तथा शिल्प, देहाती अंचलों से आने वाले दर्शकों के बीच खेले जा रहे नुक्कड़ नाटकों से थोड़ी भिन्न हो सकती है।

कुछ लोगों ने इसे चौराहा नाटक भी कहा है। किंतु यह नाम प्रचलित नहीं हो सका। नुक्कड़ नाटकों में लोक शैली के तत्वों का व्यापक प्रयोग किया जाता है, इससे नाटकों में रोचकता पैदा होती है। लोक शैली के गीतों का भी इसमें भरपूर इस्तेमाल होता है खास तौर पर आरंभ में दर्शकों को लुभाकर इकट्ठा करने के लिए।

जनवादी विचारों वाले लेखकों और पत्र-पत्रिकाओं ने नुक्कड़ नाटकों को स्थापित और समृद्ध करने में खास भूमिकाएं निभायी हैं। उत्तरगाथा, उत्तरार्द्ध कथन आदि पत्रिकाएं इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। गुरुशरण सिंह तथा असगर वजाहत जैसे नाटककारों तथा जनम और सहमत के साथियों ने नुक्कड़ नाटकों को प्रतिष्ठित करने में प्रमुख भूमिका निभायी है।

साभार-आधार ग्रंथ उत्तरार्द्ध, उत्तरगाथा और कथन के अंक।
सहमत के प्रकाशन।

देनहार कोउ और है, भेजत सो दिन रैन।
लोग भरम हमपै धरैं, याते नीचे नैन।।

दान देने वाला तो कोई और है, जो दिन-रात मुझे कुछ-न-कुछ देता रहता है, जिससे कि मैं दान-धर्म सुचारु रूप से करता रहूँ। लेकिन लोग इस भ्रम में पड़े रहते हैं कि दान देने वाला मैं हूँ, इसलिए दान देते समय मैं अपने नेत्र नीचे रखता हूँ।

दुरदिन परे रहीम कहि, भूलत सब पहिचानि।
सोच नहीं वित हानि को, जो न होय हित हानि।।

संकट की घड़ी में अपने परिचित-प्रिय लोग भी हमें भूल जाते हैं, सामने से अनजान बने निकल जाते हैं। ऐसे में केवल धन की ही हानि नहीं होती, बल्कि मित्र और हितैषी भी साथ छोड़ देते हैं। इस प्रकार दोहरी हानि उठानी पड़ती है, जो बड़ी दुखदायक होती है।

अब्दुर्रहीम खानखाना

हिन्दी एवं उसकी स्थिति

भाषा अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है । प्राचीन काल से भारत में अनेक भाषायें बोली एवं लिखी जाती रही हैं। इन भाषाओं में हिन्दी का प्रमुख स्थान रहा है। भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में हिन्दी भाषा ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भारत में हिन्दी भाषा की स्वीकार्यता एवं क्षेत्र-विस्तार को देखते हुए, संविधान सभा ने 14 सितम्बर, सन् 1949 को हिन्दी भाषा को संघ की राजभाषा का दर्जा दिया। हमारे देश में हिन्दी मुख्यतः संपर्क भाषा, राष्ट्रभाषा तथा राजभाषा के रूप में प्रयोग में लाई जा रही है जिससे स्पष्ट होता है कि हिन्दी भाषा का भौगोलिक विस्तार पूरे देश में है अर्थात् वह देश की सर्व स्वीकृत भाषा है। इसे भारत के सर्वाधिक व्यक्ति समझ पाते हैं और संविधानकार भी ऐसा मानते थे कि हिन्दी का प्रश्न वर्ग-विहीन समाज की स्थापना से जुड़ा हुआ है। हिन्दी को बढ़ाने का अर्थ अन्य भारतीय भाषाओं को नकारने का नहीं है अपितु उनको भी साथ लेकर चलने का है। देश की सर्व स्वीकृत भाषा होने के बावजूद हिन्दी भाषा को अभी तक राष्ट्रभाषा के रूप में स्थापित नहीं किया जा सका है। आजादी के 69 वर्ष बीत जाने बाद भी आज देश को एक राष्ट्रभाषा की दरकार है जो कि एक चिंतन का विषय है। यूँ तो कमोवेश सभी स्वीकार करते हैं कि हिन्दी भाषा में राष्ट्रभाषा बनने के सभी गुण मौजूद हैं फिर ऐसी क्या राजनीतिक, सामाजिक अथवा मनोवैज्ञानिक समस्यायें हैं जो उसकी यह राह रोक रही हैं। उन सभी समस्याओं पर विचार करते हुए उनका समाधान ढूँढने का प्रयास ही इस लेख का निहितार्थ है।

सरकारी कार्यों में राजभाषा हिन्दी का पूर्ण रूप से अनुपालन सुनिश्चित करने के उद्देश्य से संविधान सभा ने सर्वसम्मति से निर्णय लिया कि संविधान लागू होने से पन्द्रह वर्ष की अवधि तक अंग्रेजी भाषा को हिन्दी भाषा की सहायक भाषा के रूप में जारी रखा जाना चाहिए। इस निर्णय के पीछे संविधान सभा की मंशा हिन्दी को सुदृढ़ एवं समृद्ध बनाने की थी। हालाँकि यह बात अलग है कि यदि आज संविधान सभा अपने इस निर्णय की समीक्षा करती तो शायद उसे आज अपने इस निर्णय को वापस लेना पड़ता क्योंकि आज संविधान सभा का निर्णय उसकी भावनाओं के विरुद्ध दिखाई पड़ता है। आज हिन्दी नहीं बल्कि अंग्रेजी भाषा कहीं ज्यादा समृद्ध एवं सुदृढ़ होती हुई दिखाई पड़ती है और उसका प्रमुख कारण रहाः- गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग, भारत सरकार द्वारा राजभाषा से जुड़े नियमों एवं

अधिनियमों का कड़ाई से अनुपालन न होना तथा अंग्रेजी बोलने की हमारी दिखावटी मानसिकता ।

भारत सरकार ने हिन्दी को संघ की राजभाषा का दर्जा दिलाने तथा उसके समग्र विकास के लिए अनेक प्रकार की प्रोत्साहन योजनाएं चला रखी हैं परन्तु उसके बावजूद यदि आज हम देखें तो कई सरकारी कार्यालयों में राजभाषा हिन्दी का प्रचार-प्रसार एवं उसका संवर्धन केवल रबड़ की मोहरों, नाम पट्टिकाओं, पत्र शीर्षों, लिफाफों, हिन्दी दिवस, हिन्दी पखवाड़ा तथा हिन्दी कार्यशालाओं तक ही सिमट कर रह गया है ।राजभाषा हिन्दी का प्रचार-प्रसार करने के लिए राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा केन्द्र सरकार के प्रत्येक मंत्रालय एवं उसके अधीनस्थ हर एक विभाग/संस्थान/संगठन में राजभाषा प्रकोष्ठ स्थापित करने के निर्देश दिये हुए हैं । इन प्रकोष्ठों की स्थापना का उद्देश्य राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा समय-समय पर जारी कार्यालय आदेशों/ज्ञापनों का संबंधित विभागों/अनुभागों में अनुपालन सुनिश्चित कराना है। आदेशनुसार केन्द्र सरकार के लगभग प्रत्येक विभाग/संस्थान/संगठन में राजभाषा प्रकोष्ठ स्थापित है तथा प्रकोष्ठ में कार्यरत कर्मचारी राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार के आदेशानुसार राजभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार एवं इसके संवर्धन के कार्य में निष्ठापूर्वक लगे हुए हैं। यह बात अलग है कि वे इस लक्ष्य को प्राप्त करने में अभी तक शत-प्रतिशत सफलता हासिल नहीं कर पाये हैं । इस असफलता के पीछे सबसे बड़ा कारण संबंधित विभाग/संस्थान/संगठन में कार्यरत कर्मचारियों की यह धारणा है कि राजभाषा हिन्दी का प्रचार-प्रसार एवं

इसके संवर्धन की पूरी की पूरी जिम्मेदारी राजभाषा प्रकोष्ठ में कार्यरत कर्मचारियों की है जबकि उनकी ये धारणा गलत है। राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार के दिशा-निर्देशों के अनुरूप राजभाषा प्रकोष्ठ का प्रमुख कार्य संबंधित विभाग/संस्थान/संगठन के कर्मचारियों को राजभाषा हिन्दी में कार्य करने के लिए प्रेरित एवं प्रोत्साहित करना है और यदि राजभाषा हिन्दी के प्रयोग में किसी कर्मचारी को कहीं कोई समस्या आती है तो उस समस्या का समाधान करके संबंधित कर्मचारी को हिन्दी के प्रयोग के प्रति प्रेरित एवं प्रोत्साहित करना है। कतिपय कर्मचारी दिन-भर अपने साथियों के साथ वार्तालाप, गप-शप तथा हंसी-मजाक तो हिन्दी भाषा में करते हैं और ऐसा करते समय वे अच्छी हिन्दी का प्रयोग भी करते हैं परन्तु जब किसी सरकारी पत्र का मसौदा तैयार करने की बात आती है तो ये कर्मचारीगण हिन्दी भाषा के बोध के प्रति अपनी असमर्थता जाहिर करते हैं। एक ओर जहाँ आज विश्व के कई विश्वविद्यालों में हिन्दी भाषा में अध्ययन एवं अध्यापन का कार्य हो रहा है, विदेशी लोग हिन्दी भाषा सीखने के प्रति लालायित हैं, वहीं दूसरी ओर हिन्दी भाषा को अपने ही लोगों के बीच घोर उपेक्षा का शिकार होना पड़ रहा है। किसी भी भाषा को सीखने में किसी को कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। व्यक्ति का बहुभाषी होना उसके प्रतिभावान होने का लक्षण है परन्तु अपनी मातृ भाषा को दर-किनार करके दूसरी भाषा को कहीं ज्यादा अहमियत देना हम लोगों के लिए जरूर चिंता की बात होनी चाहिए।

हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रचार एवं इसके संवर्धन में सबसे ज्यादा योगदान सदैव हिन्दी फिल्मों एवं हिन्दी के समाचार पत्रों एवं पत्रिकाओं का रहा है और यदि हम आज के दौर की बात करें तो सोशल मीडिया भी इसमें अपना खूब योगदान दे रहा है। उल्लेखनीय है कि यदि आज ये सब माध्यम न होते तो शायद आज जो हिन्दी का अस्तित्व बचा हुआ है वह भी न बचा होता । स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले भी हिन्दी फिल्मों, समाचार पत्रों एवं पत्रिकाओं का हिन्दी के प्रचार-प्रसार में प्रमुख योगदान रहा है जो आज भी अक्षुण्ण है। अब बात करते हैं हिन्दी भाषा को अपने ही लोगों के बीच क्यों संघर्ष एवं घोर उपेक्षा से गुजरना पड़ रहा है । मेरी नजर में इसके प्रमुख कारण हो सकते हैं: कि मौजूदा समय में अधिकांश प्रौद्योगिकी, चिकित्सा एवं विज्ञान की पुस्तकें अंग्रेजी भाषा में उपलब्ध हैं जिसके फलस्वरूप कतिपय छात्रों को इन्हें मजबूरी में पढ़ना पड़ रहा है। प्रौद्योगिकी, चिकित्सा एवं विज्ञान की पुस्तकें हिन्दी भाषा में उपलब्ध होनी चाहिए जिससे प्रौद्योगिकी, चिकित्सा एवं विज्ञान का लाभ समाज की अंतिम पंक्ति में खड़े व्यक्ति को भी मिल सके। हिन्दी भाषा को ज्यादा से ज्यादा रोजगार के क्षेत्रों से जोड़ा जाना चाहिए। उसके बाद हो सकता है आने वाली पीढ़ियाँ हिन्दी के प्रति आकर्षित हो। आज विश्व के कुछ विकसित देशों में प्रौद्योगिकी, चिकित्सा एवं विज्ञान की शिक्षा वहाँ की अपनी भाषाओं में उपलब्ध कराई जा रही है तथा ऐसा करने वाले देश आज दुनिया भर में छाये हुए हैं। ज्ञात हो कि अपनी भाषा को अपना कर आज ये देश प्रौद्योगिकी, चिकित्सा एवं विज्ञान के क्षेत्र में अग्रणी स्थान हासिल किये हुए हैं। जब ये देश अपनी भाषा को अपनाकर दुनिया में अग्रणी स्थान हासिल कर सकते हैं तो फिर भारत ऐसा क्यों नहीं कर सकता? भारत को आज तेजी से उभरती हुई अर्थव्यवस्था के रूप में देखा जा रहा है। यदि आज भारत सरकार प्रौद्योगिकी, चिकित्सा एवं विज्ञान से जुड़ी शिक्षा, शिक्षण एवं शोध कार्यों में हिन्दी भाषा को अनिवार्य बना दे तो तमाम विदेशी कंपनियों, को मजबूरी में ही सही परन्तु, हिन्दी भाषा सीखने के लिए विवश तो होना ही पड़ेगा। यदि ऐसा होता है तो वो दिन दूर नहीं जब भारत विकास के मामले में जापान, अमेरिका तथा फ्रांस जैसे देशों की कतार में खड़ा हुआ नजर आएगा। हाँ यह अवश्य ध्यान रखना होगा कि हिन्दी में उसी स्तर का कार्य हो जिस स्तर का अंग्रेजी में कहीं भी सबसे अच्छा कार्य हो रहा है। प्रांतीय स्तर के कई विश्वविद्यालयों में हिन्दी तो आ गई किन्तु कार्य की प्रकृति का, गुणात्मकता के मानदंडों के अनुसार न होने के कारण ऐसी हिन्दी भी हिन्दी की शत्रु का काम कर रही है।

वैज्ञानिकों को भी प्रोत्साहित एवं प्रेरित करना होगा ताकि वे शोध कार्य हिन्दी भाषा में निष्पादित कर सकें । राजभाषा हिन्दी को रबड़ की मोहरों, नाम पट्टिकाओं, पत्र शीर्षों, लिफाफों तथा हिन्दी दिवस, हिन्दी पखवाड़ा एवं हिन्दी कार्यशालाओं से बाहर निकालना होगा तथा अधिक से अधिक मूल लेखन कार्य हिन्दी भाषा में सम्पन्न करना होगा । अधिक से अधिक मूल लेखन कार्य हिन्दी भाषा में निष्पादित करने के लिए इस क्षेत्र से जुड़े हुए उच्च कोटि के विद्वान लोगों को आमंत्रित कर सकते हैं तथा संबंधित विषयों पर उनके व्याख्यान एवं संगोष्ठियों का आयोजन करा सकते हैं । इसके अतिरिक्त हमें अपनी अंग्रेजीदाँ मानसिकता का त्याग करना होगा तथा हिन्दी भाषा के प्रति सम्मान पैदा करना होगा। साथ ही साथ संविधान की आठवीं अनुसूची में

उल्लिखित समस्त 22 भाषाओं का सम्मान एवं उनका प्रचार-प्रसार तथा संवर्धन करना होगा। ऐसा करने से अन्य भाषा-भाषी लोगों का हिन्दी के प्रति प्रेम एवं सम्मान बढ़ेगा। अधिकाधिक शोध कार्य हिन्दी भाषा में सम्पन्न होने चाहिए जिससे भारत में ही विनिर्माण कार्य हो सके। शोध एवं वि-निर्माण कार्यों की बदौलत बाजार में रोजगार के ढेरों अवसर उत्पन्न हो सकते हैं। भारत के अन्दर प्रतिभा की बिल्कुल भी कमी नहीं है लेकिन भारत में शोध सुविधाओं की भारी कमी है जिसके फलस्वरूप भारत के हजारों छात्र अध्ययन के उपरान्त विदेश में जाकर उच्च स्तरीय शोध कार्य करते हैं । यदि इन विद्यार्थियों को भारत में ही शोध सुविधाएं उपलब्ध करा दी जायें और उन्हें हिन्दी भाषा में ही शोध कार्यों को सम्पन्न करने के लिए प्रेरित एवं प्रोत्साहित किया जाए तो काफी कुछ स्थिति बदल सकती हैं । इसके लिए मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार के अधीन कार्यरत 'वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग' द्वारा सरल एवं प्रचलित शब्दों से युक्त शोध संबंधी पुस्तकें बाजार में उपलब्ध कराई जानी चाहिए ताकि हिन्दी भाषा में शोध कार्यों को बढ़ावा मिल सके । यदि हम ऐसा करने मे सफल होते हैं तो काफी हद तक हिन्दी भाषा को समृद्ध बनाने में कामयाब हो सकते हैं। उल्लेखनीय है कि राजभाषा हिन्दी का प्रचार-प्रसार करना केवल राजभाषा प्रकोष्ठ में कार्यरत कर्मचारियों का ही उत्तरदायित्व नहीं बल्कि भारत सरकार के कर्मचारी होने के नाते हर कर्मचारी का यह संवैधानिक उत्तरदायित्व बन जाता है कि वह राजभाषा हिन्दी का सम्मान करें और उसके संवर्धन में अपना सकारात्मक योगदान दे। भारत सरकार को संविधान में घोषित राजभाषा की वर्तमान नीतियों की गहराई से समीक्षा करनी चाहिए और यदि जरूरत पड़े तो इससे जुड़े हुए नियमों एवं अधिनियमों को और सख्त किया जाना चाहिए। क्योंकि भारत में ऐसी मानसिकता प्रचलन में है कि बिना भय के किसी भी चीज का शत-प्रतिशत अनुपालन नहीं हो पाता। रही बात केन्द्र सरकार के कर्मचारियों की तो कम से कम वे कर्मचारी जो दिनभर हंसी मजाक, वार्तालाप एवं गपशप हिन्दी मे कर सकते हैं सरकारी पत्र हिन्दी भाषा में लिखना तो शुरू कर ही सकते हैं? बाधा केवल दिखावटीपन की है। अगर ऐसे कर्मचारी अंग्रेजी बोलने के अपने दिखावटीपन को छोड़ दें तो वह भी निश्चित रूप से हिन्दी भाषा में अच्छा लिख सकते हैं।

भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर के राजभाषा प्रकोष्ठ में कार्यरत कर्मचारी संस्थान में राजभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार तथा इसके संवर्धन के प्रति पूरी तरह से प्रतिबद्ध हैं। संस्थान में राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा जारी नियमों / अधिनियमों / दिशा-निर्दशों का अक्षरशः अनुपालन किया जाता है। संस्थान में प्रयोग में लाये जाने वाले समस्त प्रपत्र द्विभाषी रूप में उपलब्ध हैं तथा कर्मचारियों द्वारा इनका बखूबी इस्तेमाल भी किया जा रहा है। अधिकांश कार्यालय आदेश, परिपत्र एवं सूचनाएं द्विभाषी रूप में जारी की जाती हैं। संस्थान के विभिन्न प्रशासनिक अनुभाग अपने यहाँ प्राप्त हो रहे अधिकतर पत्रों के जबाव हिन्दी भाषा में ही दे रहे हैं। आवश्यकतानुसार कर्मचारियों के साथ पत्राचार हिन्दी भाषा मे किया जाता है । मित्रों! हिन्दी भाषा में बात करने तथा लिखने में हमें गौरवान्वित महसूस करना चाहिए। मुझे विश्वास है कि हम सबके सामूहिक प्रयास से आने वाले दिनों में राजभाषा हिन्दी को उसे अपना उचित स्थान प्राप्त हो जाएगा ।

जगदीश प्रसाद

कसें कनकु मनि पारिखि पाएँ।
पुरुष परिखिअहिं समयँ सुभाएँ।।

जैसे सोना कसौटी पर कसे जाने पर और रत्न पारखी के मिलने पर ही जाना जाता है, वैसे ही पुरुष की परीक्षा समय पड़ने पर उसके स्वभाव से ही हो जाती है।

जब तक परीक्षा नहीं होती है तब तक जीवन के सत्व का पता नहीं चलता है। साधारण परिस्थिति में हर व्यक्ति श्रेष्ठ और सदाचारी होता है, लेकिन संकट आने पर वह पराजित और पलायित हो जाता है। कठिन परिस्थिति में भी यदि मनुष्य अपने आचरण की दीप्ति को बनाये रखे तो समझना चाहिए कि वह आचरण में अद्वितीय है। इसके सहारे बड़े-से-बड़े संकट का सामना वह सहज ही कर लेता है।

साभार - राजेन्द्र अरुण

कार्यालयीन टिप्पणियां

भुगतान के लिए स्वीकृत	Accepted for payment
यथाप्रस्तावित कार्रवाई की जाए	Action may be taken as proposed
नीचे लिखे ब्यौरों के अनुसार	As per details below
समेकित रिपोर्ट प्रस्तुत की जाए	Consolidated report may be furnished
दैनंदिन प्रशासनिक कार्य	Day to day administrative work
आवश्यक कार्रवाई करें	Do the needful
अनुवर्ती कार्रवाई	Follow up action
सादर निवेदन है	I have honour to say
कृपया पावती भेजें	Kindly acknowledge

संपर्क :
राजभाषा प्रकोष्ठ
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर (उ.प्र.)
दूरभाष- 0512-259-7122
ईमेल-blohani@iitk.ac.in, vedps@iitk.ac.in, sunitas@iitk.ac.in
वेब-http://www.iitk.ac.in/infocell/iitk/newhtml/Antas/

लैंगिक उत्पीड़न आई आई टी कानपुर में अस्वीकार्य है -

आई आई टी कानपुर अपने विद्यार्थियों, कर्मचारियों एवं आगंतुकों को सुरक्षित, निर्भीक, व्यावसायिक तथा शैक्षिक वातावरण प्रदान करने के लिए कटिबद्ध है। प्रारम्भ से ही स्थापित, विशाखा निर्देशों के अनुरूप, महिला प्रकोष्ठ का अधिदेश लिंग भेद और अनुपयुक्त लैंगिक व्यव्हार की रोकथाम करना है। इस उद्धेश्य को संस्थान के समस्त कर्मचारियों और निवासियों में लैंगिक संवेदनशीलता और न्याय को स्थापित करके भली प्रकार से प्राप्त किया जा सकता है। आई आई टी कानपुर का महिला प्रकोष्ठ लैंगिक भेदभाव (स्पष्ट अथवा निहितार्थ) संबंधी सभी शिकायतों पर कार्यवाही करता है ।

आई आई टी कानपुर में, Sexual Harassment of Women at Work Place Act 2013, के अनुसार Internal Complaints committee (ICC) का भी गठन किया गया है। इसमें नियमानुसार महिलाओं, स्टाफ, विद्यार्थियों और पुरुष संकाय सदस्यों का आवश्यक प्रतिनिधित्व है। ICC में एक महिला सदस्य कैम्पस के बाहर से भी है जो व्यवसाय से वकील है। ICC के किसी भी सदस्य से लिखित शिकायत के द्वारा संपर्क किया जा सकता है। सभी शिकायतों पर उचित कार्यवाही की जाती है और उसको गोपनीय रखा जाता है। अनेक शिकायतें आ चुकी हैं और उन पर नियमानुसार कार्यवाही की गई है।

अभिकल्प (Design)
सुनीता सिंह

संपर्क करें : women_cell@iitk.ac.in

डॉ. नंदिनी नीलकंठन, nandini, अध्यक्षा, 7066
डॉ. मिनी चंद्रन, minic, उपाध्यक्षा, 7191
डॉ. मोनिका कटियार, mk, 7941
डॉ. नंदिनी गुप्ता, ngupt, 7511
डॉ. देवोपम दास, dd, 7227
डॉ. ब्रज भूषण, brajb, 7024
मिज मधुश्री सरकार, gagank, विद्यार्थी

चुप रहना हमेशा सर्वश्रेष्ठ निर्णय नहीं है।
लैंगिक भेदभाव के विरुद्ध आवाज़ उठाएँ।